ट्रस्ट व प्रबंधकारिणीके सदस्य

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला पुष्प नं० १



श्रीमत्परमपूज्य विद्वच्छिरोमणि प्रातःस्मरणीय दिगंबर
जैनाचार्यश्रीकुन्थुसागरजीमहाराजविरचित

लघुबोधामृतसार

[संस्कृत, अंग्रेजी व हिंदी टीकासहित]

प्रकाशक—
धर्मनिष्ठ धर्मभूषण
सेठ मोतीचन्दजी सरिया, रामबाग

—*—

द्वितीयावृत्ति ५००० } वीर संवत् २४७१ सन् १९४४ { वीरामृतपान

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रंथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है।

सामान्य नियम.

१ इस ग्रंथमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकृत की जायगी।

२ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रंथमालाका स्थायी सभासद बनेंगे उनको ग्रंथमालासे प्रकाशित सर्वग्रंथ पोस्टेज खर्च लेकर विनामूल्य दिये जायेंगे।

३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे।

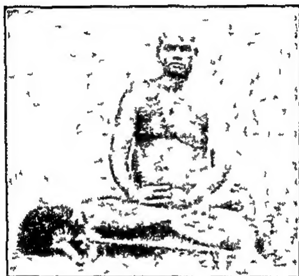
६ ग्रंथोंके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रंथमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रंथोंके उद्धार में ही होगा।

७ ग्रंथमालाके ट्रस्टडीड होकर मुंबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है।

सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी
ठि. रावजी सखाराम दोशी, कोषाध्यक्ष सोलापुर

ग्रंथमालासंबंधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला, सोलापुर



श्रीपरमपूज्य, पूज्यपाद, प्रातःस्मरणीय, जगद्वंद्य, जगदुद्धारक,
नरेंद्रपूज्य, व्याख्यानवाचस्पति, कविवर्य,
वादीभकेसरी, विद्वच्चिंतामणि,
आचार्यवर्य १०८ श्रीकुन्थुसागरजी महाराज

" भूमिका "

इस परिवर्तनशील संसारमें प्रतिदिन निरंतर प्रत्येक मानवके लिए " आया कहांसे, जाना कहां और करना क्या " इन तीन बातोंपर विचार करनेकी परम आवश्यकता है। दो सौ पचास वर्ष पहिलेका कोई भी मनुष्य आजकल दृष्टिगोचर नहीं होता है। इससे यह निष्कर्ष निकला कि सब मानव नये आकर इस संसाररूपी सरायमें बसे हैं। जब किसी अन्य स्थानसे आना सिद्ध हुआ तो जाना भी एक दिन अवश्य होगा। आया जरूर जाना भी जरूर और करना भी जरूर है। सत्कार्य करो या या दुष्कार्य करो। जानेके लिए पांच ही स्थान हैं याने गति हैं, नरकगति, पशुगति, मनुष्यगति, देवगति और पांचवीं अंतिम मोक्षगति हैं। इनके सिवाय और छटी कोई गति नहीं है। आधुनिक कालमें मनुष्य सौ सवासौ बरससे अधिक नहीं रह सकता है। सदाके लिए न कोई रहा और न रहेगा। सब सम्पत्ति, राज्य, वैभव, इष्टमित्रादिक और कुटुंबवर्गका समागम विद्युत् वेगके समान या जलके बुदबुदा समान क्षणभंगुर जानो। करनीका फल अवश्य भोगना ही पडेगा। भोगे बिना कर्मोंसे छुटकारा नहीं होगा। इसलिए प्रत्येक मानवको कर्तव्यपरायण बनकर, इस भूतलके ऊपर ऐसे ऐसे अलौकिक कार्य करना चाहिए जिससे कोई भी मनुष्य भूखा न मरे। अन्नहीनको अन्न देना, वस्त्रहीनको वस्त्र देना, स्थान भ्रष्टको स्थान देना। किसीकी निंदा, बुराई, तिरस्कार, अपमान आदि न करना यही सर्व धर्मोंका सार है। इसके बिना जीवन भी मरणतुल्य है। मानवजीवनकी शोभा इस भूतलपर देश विदेश काले गोरे आदिके भेदको सर्वथा छोडकर प्राणिमात्रके हित

चिंतन करनेसे, उनके साथ प्रेम बढानेसे ही होगी। केवल अपने कुटुंबका पालन करना मनुष्यता नहीं होगी। यह तो पशुवृत्तिका परिचय देना है। क्यों कि पशु भी अपने कुटुंबका पालन करते हैं। इसमें कोई विशेषता नहीं। सत्कार्योंके द्वारा ही मनुष्य अपने जीवनको उन्नत और विकासमय बना सकता है।

जीवोंकी हिंसा करनेसे नरक आयुका बंध होता है, कुटिल और अशुभ परिणामोंसे पशु पर्याय का बंध होता है। और शुभाशुभ मिश्रित भावोंसे मनुष्य आयुका बंध होता है। और परोपकार परिणतिरूप शुभभावोंसे देव आयुका बंध होता है। इस प्रकार आत्मज्ञानरहित संसारी जीव आयु कर्मका बंध करते हैं। संसारमें परिभ्रमण कराने वाले और अतिशय दुःखको देनेवाले आयु कर्मका बंध प्रायः मोहसे होता है। इसप्रकार ऊपर कहे हुए भावोंसे रहित जीव है, वह किसी समय भी कर्मोंका बंध नहीं करता है।

इस ग्रंथमें आचार्यश्रीने वास्तविकतासे विश्वप्रेम और विश्व कल्याणकी भावना प्रदर्शित कर संसारको सच्ची शांति और सच्चा सुख प्राप्त करनेका मार्ग बतलाया है। यह ग्रंथ कोई जाति, कौम व समाज विशेषको लक्ष्य करके नहीं लिखा गया है, किंतु मानवमात्रके हितके लिए "लघुबोधामृतसार" नामक अनुपम ग्रंथकी रचना की। संसारमें ऐसे सद्गुरु और महात्माओंका जीवन केवल जगत्‌कल्याणके लिए ही होता है। अतः ऐसे निस्वार्थ परोपकारी, विश्वोद्धारक महात्माका संपूर्ण प्राणियोंको कृतज्ञ होना चाहिए। इसमें मानव जीवनकी सफलता है।

गुरुचरणसरोजचचरीक—

सज्जनलाल जैन पोस्टल आफीसियल रतलाम.

ग्रंथकर्ताका परिचय

महर्षि प्रातः स्मरणीय आचार्य कुंथुसागरजी महाराजने इस ग्रंथकी रचना की है। आप एक परम प्रभावक वीतरागी, विद्वान् आचार्य हैं। आपकी जन्मभूमि कर्णाटक प्रान्त है जिस पूर्वमें कितने ही महर्षियोंने जन्म लेकर जैनधर्मका मुख उज्ज्वल किया था। इसलिए " कर्णेषु अटतीति " सार्थक नामको पाकर सबके कानोंमें गूंज रहा है।

कर्णाटक प्रांतके ऐश्वर्यभूत बेळगाव जिल्हेमें ऐनापुर नामक सुंदर नगर है। वहांपर चतुर्थकुलमें भूषणभूत अत्यंत शांत स्वभाववाले सातप्पा नामक श्रावकोत्तम रहते थे। आपकी धर्मपत्नी साक्षात् सरस्वतीके समान सद्गुणसंपन्न थी। इसलिए सरस्वतीके नामसे ही प्रसिद्ध थी। सातप्पा व सरस्वती दोनों अत्यंत प्रेम व उत्साहसे देवपूजा व गुरूपास्ति आदि सत्कार्यमें सदा मग्न रहते थे। धर्मकार्यको व प्रधानकार्य समझते थे। उनके हृदय में आंतरिक धार्मिक श्रद्धा थी। श्रीमती सौ. सरस्वतीने संवत् २४२० में एक पुत्ररत्नको जन्म दिया। इस पुत्रका जन्म कार्तिक शुक्लपक्षकी द्वितीयाको हुआ। मातापिताओंने पुत्रका जीवन सुसंस्कृत हो इस सुविचारसे जन्मसे ही आगमोक्त संस्कारोंसे संस्कृत किया। जातकर्म संस्कार होनेके बाद शुभमुहूर्तमें नामकरण संस्कार किया जिसमें इस पुत्रका नाम रामचंद्र रखा गया। बादमें चौलकर्म, अक्षराभ्यास, पुस्तकग्रहण आदि आदि संस्कारोंसे संस्कृत कर सद्विद्याका अध्ययन कराया। रामचंद्रके हृदयमें बाल्यकालसे ही विनय, शांति व सदाचार आदि भाव

जागृत हुए थे। जिसे देखकर लोग आश्चर्ययुक्त व सन्तुष्ट होते थे। रामचंद्रको बाल्यावस्थामें ही साधु सधर्मियोंके दर्शनमें उत्कट इच्छा रहती थी। कोई साधु ऐनापुरमें जाते तो यह बालक दौड कर उनका वंदनाके लिए पहुंचाता था। बाल्यकालसे ही इसके हृदयमें धर्मके प्रति अभिरुचि थी। सदा अपने सधर्मियोंके साथ तत्वचर्चा करनेमें ही समय बिताता था। इस प्रकार सोलह वर्ष व्यतीत हुए। अब माता पितापितावोंने रामचंद्रको विवाह करने का विचार प्रगट किया। नैसर्गिक गुणसे प्रेरित होकर रामचंद्रने विवाहके लिए निषेध किया एवं प्रार्थना की कि पिताजी! इस लौकिक विवाहसे मुझे संतोष नहीं होगा। मैं अलौकिक विवाह अर्थात् मुक्तिलक्ष्मीके साथ विवाह कर लेना चाहता हूं। मातापितावोंने पुनश्च आग्रह किया। मातापितावोंकी आज्ञोल्लंघनभयसे इच्छा न होते हुए भी रामचंद्रने विवाहकी स्वीकृति दी। मातापितावोंने विवाह किया। रामचंद्रको अनुभव होता था कि मैं विवाह कर बड़े बंधनमें पड़ गया हूं।

विशेष विषय यह है कि बाल्यकालसे संस्कारोंसे सुदृढ होने के कारण यौवनावस्थामें भी रामचंद्रको कोई व्यसन नहीं था। व्यसन था तो केवल धर्मचर्चा, सत्संगति व शास्त्रस्वाध्यायका था। बाकी व्यसन तो उससे घबराकर दूर भागते थे। इस प्रकार पच्चीस-वर्ष पर्यंत रामचंद्रने किसी तरह घरमें वास किया। परंतु बीचबीचमें यह भावना जागृत होती थी कि भगवन्! मैं इस गृहबंधनसे कब छूटूं? जिनदीक्षा लेनेका भाग्य कब मिलेगा? वह दिन कब मिलेगा जब कि सर्वसंगपरित्यागकर मैं स्वपरका कल्याण कर सकूं?

देववशात् इस बीचमें मातापिताओंका स्वर्गवास हुआ। विकराल कालकी कृपासे भाई और बहिनका भी विरह हुआ। तब रामचंद्रजीका चित्त और भी उदास हुआ। उनका बंधन छूट गया। तब संसारकी अस्थिरताका उन्होंने स्वानुभवसे पक्का निश्चय करके और भी धर्ममार्गपर स्थिर हुए।

रामचंद्रके श्वसुर भी धनिक थे, उनके पास बहुत संपत्ति थी। परंतु उनका कोई संतान नहीं था। वे रामचंद्रसे कई दफे कहते थे कि यह संपत्ति (घर वगैरह) तुम ही ले लो, मेरे यहांके सब कारोबार तुम ही चलाओ। और रामचंद्र अपने श्वसुरको दुःख न हो इस विचारसे कुछ दिन रहा भी। परंतु मनमनमें यह विचार किया करता था कि " मैं अपना भी घरदार छोडना चाहता हूं। इनकी संपत्तिको लेकर मैं क्या करूं "। रामचंद्रकी इस प्रकारकी वृत्तिसे श्वसुरको दुःख होता था। परंतु रामचंद्र लाचार था। जब उसने सर्वथा गृहत्याग करनेका निश्चय ही कर लिया तो उनके श्वसुरको बहुत अधिक दुःख हुआ।

आपने श्रीपरमपूज्य आचार्य श्री शांतिसागर महाराजके पादमूलको पाकर अपने संकल्पको पूर्ण किया। सन् २५ में श्रवणबेलगोलाके मस्तकाभिषेकके समय पर आपने क्षुल्लक दीक्षा ली व सोनागिर क्षेत्रपर मुनिदीक्षा ली। और मुनि कुंथुसागरके नामसे प्रसिद्ध हुए। जब आप घर छोड करके साधु हुए तब आपकी धर्मपत्नी धर्मध्यान करती हुई घरमें ही रही।

आपने अपनी क्षुल्लक व एलक अवस्थामें बहुतसा धर्मप्रभावनात्मक कार्य किये हैं। संस्कारोंके प्रचारके लिये सतत उद्योग

किया है। आपने मुनि अवस्थामें उत्तरप्रांतके अनेक स्थानोंमें विहार कर धर्मकी जागृति की है। गुजरात व बागड प्रांत जो कि चारित्र व संयमकी दृष्टिसे बहुत ही पीछे पड़ा था, उस प्रांतमें छोटे छोटे गांवमें भी विहार कर लोगोंको धर्ममें स्थिर किया है।

आपमें स्वपरकल्याणकारी निर्मल ज्ञान होनेके कारण आप सर्वजनपूज्य हुए हैं। आपकी जिस प्रकार प्रवचन कलामें विशेष गति है, उसी प्रकार वक्तृत्वकलामें भी आपकी ख्याति है। श्रोताओंके हृदयको आकर्षण करनेका प्रकार, वस्तुस्थितिका निरूपण कर मर्त्योंको संसारसे तिरस्कार विचार उत्पन्न करानेका प्रकार आपको अच्छी तरह अवगत है। आपके गुण, संयम आदियोंको देखनेपर यह कहे हुए बिना नहीं रह सकते कि आचार्य शांतिसागरजी महाराजने आपका नाम कुंथुसागर बहुत सोच समझकर रक्खा है।

आपने अपनी माता सरस्वतीका नाम सार्थक बनाया है। क्योंकि आप अपने नाम तथा काममें सरस्वतीपुत्र ही सिद्ध हुए हैं। चतुर्विंशतिजिनस्तुति, शांतिसागर चरित्र, बोधामृतसार, निजात्म शुद्धिभावना, मोक्षमार्गप्रदीप, ज्ञानामृतसार, स्वरूपदर्शनसूर्य, नरेशधर्मदर्पण मनुष्यकृत्यसार, शांतिसुधासिंधु आदि नीतिपूर्ण तत्वगर्भित १० ग्रंथरत्नोंकी उत्पत्ति आपके ही अगाधज्ञानरूपी खानसे हुई है, हो रही है और होती रहेगी।

आपके दुर्लभ संस्कृतभाषा-पांडित्यपर बडे २ विद्वान् पंडित भी मुग्ध हो जाते हैं। आपकी ग्रंथनिर्माणशैली अपूर्व है। वर्णन-कौशल्य निराला है। आगम विषयोंको आधुनिक ढंगसे

स्पष्टीकरण करनेमें आप सिद्धहस्त हैं। आपकी भाषण-प्रतिभा, शान्त व गंभीर मुद्राके सामने बडे २ राजाओंके मस्तक झुकते हैं। गुजरात प्रांतके प्राय सभी संस्थानाधिपति आपके अनुरागी शिष्य बने हुए हैं। अबतक हजारों अन्यधर्मी जैनेतर आपके सदुपदेशसे प्रभावित होकर मकारत्रय (मद्य,मांस,मदिरा) के नियमी व यमी बन चुके हैं। गुजरात व बागड प्रांतमें आपके द्वारा जो धर्मप्रभावना हुई है व हो रही है वह इतिहासके पृष्ठोंपर सुवर्णवर्णोंमें चिरकालतक अंकित रहगी। गुजरातमें कई संस्थानिकोंने अपने राज्यमें इन तपोधनके जन्मदिनके स्मरणार्थ सार्वजनिक छुट्टी व सार्वत्रिक अहिंसादिन मनानेके फर्मान निकाले हैं। सुदासना स्टेटके प्रभावशाली नरेश तो इतने भक्त बन गये हैं कि महाराजका जहां २ विहार होता है वहां प्रायः उनकी उपस्थिति रहती है। कभी अनिवार्य राज्यकार्यसे परवश होकर महाराजसे विदा होनेका प्रसंग आनेपर माताको बिछुडते हुए पुत्रके समान नरेशकी आंखोंमेंसे आंसु बहते हैं। धन्य है ऐसी गुरुभक्ति! युवराज कुमार साहेब रणजीतसिंहजी पूज्यश्रीके परमभक्त हैं। वे कई समय महाराजकी सभामें उपस्थित होकर अस्वहितके तत्वोंको पूछते हुए महाराजकी सेवामें ही दीर्घ समय व्यतीत करते हैं। तारंगाजीसे महाराजका विहार होनेका समाचार जानकर कुमार साहेबसे रहा नहीं गया, व पूज्यश्रीके चरणोंमें उपस्थित होकर (अश्रुपात करते हुए) महाराजसे निवेदन करते हैं कि स्वामिन्! पुन कब दर्शन मिलेगा? कितनी अद्भुतभक्ति है वह! पूज्यश्रीने आज गुजरातमें जो धर्मजागृति की है वह "न भूतो न भविष्यति," है। गुजरातमें जैन क्या, जैनेतर

था, हिंदू तथा, मुसलमान तथा, उनके चरणोंके भक्त हैं। आज
पूज्यश्रीका स्थान बहुत ऊंचा है। कलुशा, माणिकपुर, वेयपुर,
डूंगरपुर, बांसवाडा खोदु आदि अनेक राज्योंके अधिपति आपके
सद्गुणोंसे मुग्ध हैं। पिछले दिन बडोदा राज्यमें आपका अपूर्व
स्वागत हुआ। राज्यके न्यायमंदिरमें स्टेटके प्रधान 'सर कृष्णमा
चारीकी उपस्थितिमें आचार्यश्रीका सार्वजनिक तत्वोपदेश हुआ"।

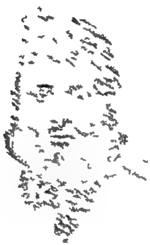
आप भगवान् समंतभद्र जिनसेनादिका स्मरण दिलाते हैं।
जो लोकोपकारका कार्य महर्षि कुंदकुंद, प्रभाचंद्र अकलंक, नेमि
चंद्र सिद्धान्त चक्रवर्ती आदिने किया था वह इस समय अपने
आचार्य कुंथुसागरजी महाराज कर रहे रहे हैं। इस समय आपके
द्वारा वागवर प्रांतमें जो चेतना [illegible] है वह आशातीत है। इस पिछडे
हुए प्रांतमें बीसों वर्षोंमें होनेलायक सुधार कुछ महिनोंमें होगया है।
ऐसे महाविभूतियोंसे ही धर्मका मुख उज्वल होता है। ऐसे प्रात
स्मरणीय पूज्य महर्षिके चरणोंमें त्रिकाल अनन्त नमोस्तु है।

प्रकृत ग्रंथ लघुबोधामृतसार जो आपके समक्ष है, पूज्य
आचार्यश्रीके द्वारा विरचित है।

ग्रन्थ-परिचय

यह लघु-बोधामृतसार नामक १० श्लोकोंका छोटासा
ग्रंथ—सांसारिक चतुर्गति और अंतिम निर्वाणगतिकी वास्तविकता
तथा जीवका कर्तव्य जाननेके लिए महान् उपयोगी है। अत
संपूर्ण मनुष्य समाजके लिए अध्ययन और मनन करने योग्य है।
इसका अनुभव कर यह जीव पंचमगति [मोक्ष] प्राप्त कर सकता है।

विनीत—गुरुचरण सेवक—वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री
मंत्री—श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला



स्वर्गीय पूज्य

स्व शास्त्रविशारद विजयधर्मसूरि महाराज



श्रीमती धर्मचंद्रिका
जड़ावबाईजी बांसवाड़ा

द्वितीयआवृत्तिके प्रकाशक

धर्मरत्न, समाजभूषण, सेठ मोतीचंदजी सरियाका

संक्षिप्त परिचय।



सेठ सुन्दरजी धनराजजीके पवित्र वंशमें सेठ चम्पालालजीके कुलदीपक पुत्र राय-साहिब विजयचंदजी गण्यमान व्यक्ति होगये हैं। आप बांसवाड़ा स्टेट व वागड़ प्रांतके भूषण थे। वीरता धीरता और धार्मिकता आदिमें वे ख्यातिप्राप्त व्यक्ति थे। राज्यमें भी आप सम्मानित सेठ थे। भारत सरकारने आपको "राय-साहिब" की पदवी प्रदान की थी। आपने संवत् १९७६ में २५०००) का दान कर बोर्डिंग स्थापित की थी जो कि आपके जीवन कालमें अच्छा कार्य करती रही। आपने अपने जीवन कालमें इस चंचललक्ष्मीका कई प्रकारसे अपने हाथों लाखों रुपयोंका दान किया।

खांदू राज्यमें होनेवाली दशहरेकी हिंसा [१०६ भैंसोंके वार्षिक वधको] हजारों रुपये व्यय करके आपने बंद करवा दी है। इसके अलावा आपने और १२ गांवोंमें भी कई जीवोंकी हिंसा सदाके लिए बंद करवाई है।

सारांश यह कि बड़े बड़े धार्मिक, सामाजिक और राजकीय कार्योंमें आपका पूरा सहयोग रहता था। ऐसे नरपुंगव सेठ विजयचंदजीके सुपुत्र सेठ मोतीचंदजी सरिया हैं।

आपका जन्म ज्येष्ठ शुक्ल ८ वीं संवत् १९६८ में हुआ है। १२ वर्षकी अवस्थामें ही आपको पितृप्रेमसे वंचित हो जाना

पड़ा, उस समय आपके छोटे भाई महीपालजीकी अवस्था ९ वर्षकी थी।

आपकी सुयोग्य, नीति-परायण, धर्मचन्द्रिका माता जड़ाव बाईजीने आपके लालन, पालन व शिक्षणका सुप्रबंध रक्खा। तथा स्टेट व गृहस्थी का संचालन भी मुनीम आदिके सहयोगसे करने लगी। फिर भी छोटी अवस्थासे ही सेठ मोतीचंदजीको गृहस्थीका भार उठाना पड़ा।

जिस प्रकार वीरता, धीरता आदिका प्रतिबिंब आपपर आप के पिताका था, उसी प्रकार धार्मिकता, आदि कई गुणोंका प्रभाव आपपर माताका था।

आपकी मातुश्री धर्मचन्द्रिका जड़ावबाईजी श्रावकके गुणोंसे परिपूर्ण पूजा, स्वाध्याय, सामायिक, धर्मचर्चा आदि धार्मिक कार्योंमें सदा तत्पर और सावधान रहती हैं। आपको धार्मिक ज्ञान भी अच्छा है। आप अपना शुद्ध भोजन अति सावधानी-पूर्वक अलग ही बनाती है और उदासीन वृत्तिसे रहती है।

ऐसी सुयोग्य माताका सेठ सा० पर भारी प्रभाव है और आप हैं भी मांके बड़े ही आज्ञाकारी पुत्र।

गत वर्ष बांसवाड़ामें महाराज कुंथुसागरजीका जो चातुर्मास हुआ उसका प्रधान श्रेय सेठ साहिबको ही है। चातुर्मासमें संघकी जो वैयावृत्ति और व्याख्यान आदि करानेका जो सुप्रबंध आपने किया वह अति प्रशंसनीय है। आपने महाराजके उप देशोंसे प्रभावित होकर समाज व धर्मसेवाके लिए अपनी शक्ति लगादी है।



श्री धर्मसिंह गुरुमल

सठ मावीचदजी सरिया, बांसवाडा



श्री धर्मनिष्ठ गुरुभक्त
सेठ मदीपालजी सरिया, बांसवाड़ा

दिगंबर जैन बार्डिंग मालवाड़ा
था पुन अच्छे रूपमें चाहु

ठकरमें भी आपको प्रधान श्रेय है।
का मी आपने एकमुश्त ५००१)
। इस तरह सायाओंके सचालन
२००००) रु का दान कर चुके हैं
प बाम्बर प्रा तके सद्धारमें कर रहे
ाप प्रतिदिन कुछ न कुछ साधा

ामें जो सेवक सहक तैयार हुए हैं
 ही कार्य है। आप एक जागृत
आपका उत्साह अपार है, जिस कार्य
छोड़ते हैं। आप इस प्रांतके चमकते
 व्यक्ति उन्हें सहयोगी मिल जांय
हो सकता है।

न भी बहुत ही सरल, सरल, सादा,
, गुणग्राहकता गुण भविष्यमें उ हैं
 कर सकता है।

मेट्रिक तक ही हुई है, फिर भा
। इससे आप इस समय निम्न
ग्राह रहे हैं—



श्री धर्मनिष्ठ गुरुभक्त
सेठ महीपालजी सरिया, बांसवाड़ा

श्री सेठ चंपालाल विनयचंद दिगंबर जैन बोर्डिंग बांसवाड़ा जो अव्यवस्थित दशापर चल रहा था पुनः अच्छे रूपमें चालू कर दिया है।

कई पाठशालाओंको संचालित करनेमें भी आपको प्रधान श्रेय है।

कुंथुसागर स्कॉलरशिप फंडको भी आपने एकमुश्त ५००१) रु प्रदान कर चालू किया है। इस तरह संस्थाओंके संचालन आदिमें आप गत वर्ष लगभग २००००) रु का दान कर चुके हैं और सबसे बड़ा कार्य तो आप बागड़ प्रांतके उद्धारमें कर रहे हैं। प्रांतके उद्धारके लिए आप प्रतिदिन कुछ न कुछ सोचा करते हैं। किया करते हैं।

बागड़ प्रांतके ग्राम ग्राममें जो सेवक मंडल तैयार हुए हैं उनमें जागृति लाना आपका ही कार्य है। आप एक जागृत कर्मठ और धनी युवक हैं। आपका उत्साह अपार है, जिस कार्यमें भिड़ जाय उसे करके ही छोड़ते हैं। आप इस प्रांतके चमकते सितारे हैं। यदि ऐसे ही कुछ व्यक्ति व हैं सहयोगी मिल जाय तो प्रांतमें आशातीत सुधार हो सकता है।

आपका व्यक्तिगत जीवन भी बहुत ही सरल, सरस, सादा, व्यवहारपटु और मिलनसार है, गुणग्राहकता गुण भविष्यमें व हैं बहुत ही उच्च पदपर आसीन कर सकता है।

आपकी शिक्षा हिंदीमें मिडिल तक ही हुई है, फिर भी योग्यता और प्रतिभा अपार है। इससे आप इस समय निम्न संस्थाओंके सभापति पदका संचालन कर रहे हैं—

श्री बागड प्रान्तीय दि० जैन सभा बांसवाड़ा
,, बागड प्रान्तीय दि० जैन महामंडल ,,
,, दि० जैन महावीर मंडल ,,
,, बागड प्रान्तीय दि० जैन कुंथुसागर
स्कालरशिप फंड बांसवाड़ा
,, कुंथुसागर जैन कन्या पाठशाला ,,
,, रायसाहब सेठ सरिया चन्दूलाल
विजयचंद बोर्डिंग हाउस ,,

तथा बांसवाड़ा स्टेटके आप बैंकर भी हैं।

आपने अपने थोड़ेसे जीवन कालमें ही निम्न लिखित महान धार्मिक कार्य किये हैं—

(१) ऋषभदेव मंदिरमें ध्वजादंड आपने नया सब कार्य करके चढ़ाया।
(२) बागड़ प्रान्तमें सिद्धचक्र विधान दो बार करके हैं। जिससे हजारों आदमियोंको एकत्र कर दिया है, सिद्धचक्र विधानकी महिमा इस प्रान्तमें सब प्रथम प्रकारकी।
(३) घरपर बने चैत्यालयकी वेदी प्रतिष्ठा।
(४) नरसिंहपुरा मंदिर बांसवाड़ाका जीर्णोद्धार व पंच कल्याणक प्रतिष्ठा
(५) कल्याणपुर [कुवाला] मंदिरकी पंचकल्याणक प्रतिष्ठा
(६) फाल्गुन शुक्ल २ वीर सं० २४७१में कलींजरा मंदिर की होनेवाली पंचकल्याणक प्रतिष्ठाका भार भी आप ही प्रधानतया सम्हालेंगे।

आपने श्री सेठ ज वि ? जैन बोर्डिंग हाउसका ध्रुव फंड बढ़ाकर गत वर्ष ६८०००) का कर दिया है।

उपयुक्त कार्योके उपलक्ष्में समाजने आपको " धर्मरत्न व समाजभूषण " के पदसे अलङ्कृत किया है और आपकी माताको धर्मचन्द्रिकापदसे विभूषित किया है।

आपके छोटे भाई महावीरप्रसादजी भी आपके कार्योंमें सहयोग देते रहते हैं। इसके अपनी बड़ी भारी सराफेकी एवं दुकानोंका संचालन उत्तम रीतिसे करते हुए भी सामाजिक और धार्मिक कार्योंमें अग्रसर रहते हैं। आप दोनों भाई राम लक्ष्मणके समान बड़े प्रेमसे रहते हैं।

आपके इस समय ३ संतान [२ पुत्रियां और १ पुत्र है] बड़ी सुपुत्रीका नाम ' कमलकान्ता ' व छोटीका ' गुणसुन्दरी ' व पुत्रका नाम ' हरिश्चन्द्र ' है। संतानकी शिक्षाका आप पूरा ध्यान रखते हैं।

सारांश यह है कि आप एक विशेष पुरुष हैं जिनसे समाज को कई आशायें हैं।

आपने परमपूज्य परम तपोनिधि विश्ववंद्य विद्वच्छिरोमणि, मरोंद्रवंद्य, चारित्र चूडामणि आचार्य १०८ कुंथुसागरजी महाराज के ग्रंथ " लघुबोधामृतसार " की द्वितीय आवृत्तिके प्रकाशनका जो भार लिया है वह आपकी गुरुभक्तिके अनुरूप ही है अन्य महाशयोंको आपका अनुकरण करना चाहिए।

गुणानुरागी—

जवाहरलाल जैन बांसवाड़ा

चित्र-परिचय ।

—o[~~~~~~~~]o—

श्री रा. सा. सेठ विजयसिंहजी बांसवाडा.

आप बागड प्रांतके एक चमकते हुए नररत्न हुए हैं। आपका सार्वजनिक व राजकीय क्षेत्रमें बहुत बडा प्रभाव था। आप दानवीरताके लिए प्रसिद्ध थे।

श्रीमती धर्मचंद्रिका जडावबाईजी—

आप स्व. सेठ विजयचंदजीकी पत्नी व सेठ मोतीचंदजी सरियाकी माता हैं। आप धर्मप्रेमी, गुरुभक्ता हैं। चातुर्मासके समय आपने आचार्यसंघकी अपूर्व सेवा की।

श्री सेठ मोतीचंदजी सरिया—

बागड प्रांतके धर्मवीर युवकरत्न व सेठ विजयचंदजीके विनयशाली ज्येष्ठपुत्र हैं। धर्मकार्यमें सदा अगुवा रहते हैं। अनेक संस्थाओंके संचालक हैं। दानकार्यमें भी अपने पिताका अनुकरण करते हैं।

श्री सेठ महीपालजी सरिया—

सेठ मोतीचंदजीके लघुभ्राता, धर्मप्रेमी और गुरुभक्त हैं। अपने भाईके समान ही सदा धर्म व समाजकार्य में भाग लेते हैं, उत्साही नवयुवक हैं। मिलनसार हैं।

आपका समस्त परिवार सुखसंपत्तिसे समृद्ध हो यह हमारी भावना है।

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

विश्ववंद्य श्रीमदाचार्यकुन्थुसागरविरचित

लघुबोधामृतसार ।



मंगलाचरण

ज्ञानभानु जिनं नत्वा, श्रीदं स्वर्मोक्षदायकम् ।
लघुबोधामृतं सारं, वक्ष्ये सद्बोधहेतवे ॥ १ ॥

संस्कृतार्थः—सुज्ञानसूर्यं वीतरागपरमदेवं नत्वा सकलैश्वर्यप्रदायकमभ्युदयनिःश्रेयसदायकम् लघुबोधामृतसारं भव्यानां बोधहेतवे वक्ष्ये इति प्रतिज्ञा करोत्याचार्यः ॥ १ ॥

THE AUSPICIOUS PRAYER

Having bowed to Jina [God], the sun of knowledge, who gives wealth and final beatitude I (Kunthusagar) tell a short essence of nectar of advice to enable the good for its achievement (1)

अर्थ —सुज्ञानसूर्य वीतराग परमदेव भगवतको नमस्कार कर आचार्य ग्रंथ-निर्माणकी प्रतिज्ञा करते हैं ।

कुत्रागतोऽहं गमनीयमस्ति, कुत्र सदा किं करणीयमेव ॥
संसारवृत्तांतविदा नरेण, सदैव चित्ते खलु चिंतनीयं ॥२॥

संस्कृतार्थः—स्वपरहितमभिलाषुकेन भवभ्रमणदुःखमनुभवन् स्वयहमात्महितैषिणा एवं चिंतनीयम्, अहं कुत्रागतः, केन भवेनाहमत्रागतः, कुत्र च गमनीयमस्ति, क्व गतौ गमनीयमस्ति, अत्र च मनुष्यभवे किं कर्तव्यमस्ति ॥ २ ॥

Where have I come where I am to go, what is

worth to be done a learned man should always consider these matters regarding the world (2)

अर्थ—अपने हितको चाहनेवाले मनुष्यको प्रतिनित्य मैं कहांसे आया हूं, कहां जाना है और यहांपर मेरा कर्तव्य क्या है ? इत्यादि विषयोंका विचार अवश्य करना चाहिए।

इस संसारमें समस्त भोगोपभोग पदार्थ नाशशील हैं। इष्टवियोग अनिष्टसंयोग का संबंध इस आत्माका प्रतिसमयमें होता रहता है। जब कि षट्खंडवैभवभोगी चक्रवर्तिकी अखंड संपत्ति, अत्यन्तदुर्लभ श्रीतीर्थंकरपरमेष्ठिकी विभूतियां, और बलभद्रादि महापुरुषोंके सर्व वैभव भी नाशशील हैं, फिर हम लोगोंकी नश्वरसंपत्तिका तो कहना ही क्या है ? क्या वह स्थिर रह सकती है ? प्रातःकालमें सुखसे स्थित मनुष्य शाम को मरणोन्मुख होता है। सवेरे पुत्रजन्मसे हर्षोत्सव मनानेवाले मनुष्य दुपहरको पुत्रवियोगसे दुःखसमुद्रमें गोते लगाते रहते हैं। यह जीवन जलबुद्बुदके समान है। परन्तु यह प्राणी इसके रहस्यको न समझकर मोह और अज्ञानके वशीभूत होकर यह शरीर, जीवन, पुत्रमित्रादिवैभव और समस्त संपत्तिको स्थिर समझकर इस संसारमें परिभ्रमण करता रहता है।

यह मनुष्य पर्याय ही सब पर्यायोंमें श्रेष्ठ है। इसी भवमें आकर यह जीव अपने शुभाशुभकर्मानुसार जिस तरह नरक, तिर्यंच, मनुष्य और देवगतियोंका टिकेट लेता है, उसी तरह संपूर्ण कर्मोंको नाश करके शिवपदको भी प्राप्त कर सकता है परंतु ये सब इस मनुष्यके कर्तव्य और भावनापर निर्भर हैं।

भो गुरो ! कीदृशो जीवो नरकं याति सत्वरम् ?

Question—Oh ! preceptor ! tell me which being goes to hell ?

प्रश्न—हे गुरो ! कैसा जीव शीघ्र ही नरक पहुंचता है ?

अत्यन्तकोपी कटुकप्रभाषी, धर्मस्य देवस्य गुरोर्विरोधी ।
धूर्तः शठः प्राणिवधप्रवृत्तो, द्रोही च यो वा कुलजातिलोपी ॥
दानादिधर्मेषु सदा रतानां, शुभावकानां भृशं निंदकश्च ।
पूर्वोक्तभावैरिति यश्च युक्तः, स एव पापी नरकस्य गामी ॥

संस्कृतार्थः—अत्यन्तकोपयुक्तः, कटुवचनप्रभाषकः, देवस्य धर्मस्य गुरोश्च निंदकः, धूर्तः, परापकारे निरतः शठः, प्राणिनां वधे प्रवृत्तः, हिंसकः, स्वबांधवानां द्रोही, स्वेच्छाचारत्वात् कुलजातिमर्यादालोपकः, दानादिधर्मेषु शुभकार्येषु रतानां श्रावकाणां निंदकः, पापी शीघ्रमेव नरकं गच्छति ॥ ३-४ ॥

That sinful man goes to hell who at once becomes angry who speaks bitter words who objects to religion, God and the preceptor who is a cunning rogue who is inclined to kill animals, who is treacherous to his fellowmen and who wants to destroy the family and the caste and who always reproaches the good householders who take interest in duties such as giving donation etc. and the one who possesses bad feelings in his mind as above mentioned above (3-4)

अर्थ—जो अत्यन्त क्रोधी है, कटुक भाषण करनेवाला है जो देव, धर्म और गुरुका विरोधी है, जो धूर्त है, मूर्ख है, प्राणियोंकी हिंसामें सदा प्रवृत्त रहता है, जो अपने भाई बंधुओंका द्रोही है, जो कुल और जातिका लोप करनेवाला है और

जो दान पूजा आदि धर्ममें सदा लीन रहनेवाले श्रेष्ठ श्रावकों कोंकी सदा निंदा करता रहता है, जिस जीवके ऊपर लिखे हुए भाव विद्यमान रहते हैं वही जीव पापी और नरकगामी समझना चाहिए।

प्रश्न—कितने वर्षोंतक जीव नरकगतिमें रहता है?

उत्तर—उत्कृष्ट ३३ सागरवर्ष पर्यंत, जघन्य दस हजार वर्ष पर्यंत और मध्यम अपनी स्थितीके अनुसार अर्थात् दस हजार वर्षोंसे लेकर अन्तर्मुहूर्तविभागक्रमसे तेतीस सागर वर्ष पर्यंत अपनी २ स्थितिके अनुसार वहांपर रहता है।

प्रश्न—कोडाकोडी किसे कहते हैं?

उत्तर—एक कोटीसे एक कोटीको गुणाकार करनेपर जो लब्ध आता है उसे कोडाकोडी कहते हैं।

प्रश्न—सागर किसे कहते हैं?

उत्तर—दस कोडाकोडी अद्धापल्यको सागर कहते हैं।

प्रश्न—अद्धपल्य किसे कहते हैं?

उत्तर—दो हजार कोश गहरे और दो हजार कोश चौड़े गोल गड्ढेमें कैचीसे जिसका दूसरा भाग न हो सके ऐसे मेंढेके बालोंको भरना। जितने बाल उसमें समावें, उनमेंसे एक एक बालको सौ सौ वर्ष बाद निकालना। जितने वर्षोंमें वे सब बाल निकल जावें, उतने वर्षोंके जितने समय हों उसका व्यवहारपल्य कहते हैं। व्यवहारपल्यसे असंख्यात गुणा उद्धारपल्य होता है। उद्धारपल्यसे असंख्यात गुणा अद्धापल्य होता है।

प्रश्न—नरकगतिमें किस तरह दुःख भोगना पड़ता है?

उत्तर—नरकमें रहनेवाले नारकी जीव सदा अशुभतर

कषायवाले, अशुभतर परिणामवाले, अशुभतर देहके धारक अशुभतर वेदनावाले और अशुभतर विक्रिया करनेवाले होते हैं। निरन्तर अशुभकर्मका उदय रहनेके कारण उनके परिणाम आदि सदा अशुभ ही रहते हैं। नारकी जीव परस्पर कुत्तोंकी तरह निरन्तर लड़ते झगड़ते रहते हैं और अम्बावरीष जातिके संक्लिष्ट परिणामवाले असुरोंके द्वारा भी दुःखी किये जाते हैं अर्थात् जिस प्रकार लोकमें अनेक अज्ञानी पुरुष मेंढ, भैंसे हाथियोंको मद्य पिलाकर परस्पर लड़ाते हैं और उनकी हार–जीतसे आनंद मानते हैं वा तमाशा देखते हैं। उसी प्रकार तीसरे नरक तकके नारकी जीवोंको दुष्ट कौतुकी देव अवधि ज्ञानसे उनके पूर्व वैरोंका स्मरण कराकर परस्पर लड़ाते तथा दुःखित करते रहते हैं और आप तमाशा देखते हैं और भी अनेक प्रकारके दुःख होते हैं।

तिर्यग्गतिं च को जीवो गुरो ! गच्छति भो वद ?

Question Oh Preceptor ! Tell me which being goes to the organic world ?

प्रश्न—हे गुरो ! यह बतलाइये कि तिर्यचगतिमें कौनसा जीव जाता है।

आचारहीना हि विचारशून्या मिथ्याप्रलापी च बहुप्रमादी
अभक्ष्यभक्षी विपरीतवृत्ति–र्बहुप्रभाजी निजकर्मबाधः ॥
दम्भी च लोभी विषये निमग्ना, दानादिधर्माद्धि सदैव दूरः।
पूर्वोक्तभावैरिति यश्च युक्तः स एव गता च गतिं तिरश्चाम्

संस्कृतार्थः—यश्च सदाचारविरहितः, विवेकविहीनः, अति प्रलापी, अतिप्रमादी, भक्ष्याभक्ष्यविवेकरहितः, बहुभोक्ता, स्वधर्ममार्ग

दूर, अहङ्कारयुक्त, लोभी, विषयेषु निमग्न, सत्पात्रदानादि सत्कार्यो-
पेक्षक, मायाचारसहित स च स्वोपार्जिततिर्यग्गतिं याति ॥५-६॥

The person goes to the organic world who has renounced all customary observances who is tbougbt less, who tells a lie, who makes many mistakes, who eats prohibited articles, whose nature is crooked, who eats too much and who does not follow religion, who is a pretender, who is covetous, who is plunged in sensual objects, who always keeps aloof from duties like giving donation etc and one who bns the bad qualities desoribed above. (5-6)

अर्थ —जो पुरुष आचाररहित है, विचाररहित है, सदा मिथ्या बकवाद करता रहता है, अत्यंत प्रमादी है, अभक्ष्य भक्षण करनेवाला है, अपनी प्रवृत्ति सदा धर्मसे विपरीत रखता है, जो अधिक अन्न भक्षण करनेवाला है निजधर्मसे पराङ्मुख है, मायाचारी है, लोभी है, विषयोंमें सदा लीन रहता है और दानपूजा आदि धर्मसे सदा दूर रहता है, जो जीव ऊपर कहे अनुसार अशुभ भावोंको धारण करता है, उसे तिर्यंच गतिमें जानेवाला समझना चाहिए।

प्रश्न—तिर्यंच गतिमें कितने समयतक रहना पड़ता है ?

उत्तर—वहांपर उत्कृष्ट स्थिति तीन पल्य, और जघन्य अन्तर्मुहूर्त तक रहती है। और अपनी २ स्थित्यनुसार मध्यम विकल्प असंख्यात हैं

प्रश्न —वहां किस तरहके दुःख भोगने पड़ते हैं ?

उत्तर —वहां पराधीनतासे उत्पन्न छेदन, भेदन बंधन आदि अनेक दुःख प्राप्त होते हैं। और समय २ में आहार पानादिक

का नहीं मिलना, तथा असह्य उष्ण, शीत आदि दुःख, मल-मूत्रादिके ऊपर ही सोना, उठना, बैठना, अपने दुःखोंको दूसरेसे कहनेकी असमर्थता इत्यादि दुःख तीन पल्यतक भोगने पड़ते हैं। यह मनुष्य उपरोक्त प्रकारके भावोंकी तरतमतासे कुत्ता, बिल्ली, घोड़ा, गधा, हाथी आदि नाना प्रकारसे तिर्यंच होकर जन्म लेता है। अतः मायाचारादिक दुर्वासना न करते हुए शुभभावोंसे अपना समय व्यतीत करना चाहिये।

मनुष्ययोनिं को जीवो यातीति वद मो गुरो !

Question —Oh, preceptor, tell me which being is born as man

प्रश्न —हे गुरो ! मनुष्ययोनिमें जाकर कौनसा जीव उत्पन्न होता है ?

यः स्वल्पलोभी विमलप्रवृत्तिः, संसारभीरुश्च दयार्द्रचित्तः ।
विनीतवृत्तिः समशान्तियुक्तो, धर्मप्रचारी च कुकर्मलोपी ॥
रुचिं विधत्ते गुरुदेवशास्त्रे धर्मे सुदाने यजनेऽपि दक्षः ।
पूर्वोक्तभावैरिति यश्च युक्तः, स एव धीरो नरजन्मगामी ॥

संस्कृतार्थ—यश्च मानवः, स्वल्पतुष्टः, निष्कपटाचारमार्गप्रवृत्तः संवेगपरायणः, दयालुः, विनयशीलः शांतिसमतासाधकः, धर्मप्रभावकोऽधर्मविरोधिश्च, देवगुरुश्रुतभक्तः, सद्धर्मे सत्पात्रदाने तथा यजनयाजनादिके कार्ये दक्षः, धीरश्च स्वोपार्जितकर्मपरिणामवशगतः मनुष्यगतिं याति ॥ ७–८ ॥

That wise being is born as man, who covets little, who is pure who fears the worldly affairs, who is kind in his heart, who is modest by nature, who is equally peaceful at all times, who spreads the religion, who destroys bad deeds, who takes interest in the preceptor, God and the religious books, who is deligent

in religion, in giving donation and in worshipping God and one who possesses the qualities described above .(78)

अर्थ—जो जीव बहुत ही कम लोभ करता है, जो अपनी प्रवृत्तिको सदा निर्मल रखता है, जो संसारसे भयभीत है, जिसका हृदय सदा दयालु बना रहता है, जो सदा विनयपूर्वक रहता है, जो समता और शांतिको सदा धारण करता रहता है धर्मका प्रचार करता रहता है, कुकर्मोंका नष्ट करता रहता है, देवशास्त्रगुरुमें सदा श्रध्दान धारण करता है, और धर्म धारण करने, दान देने और पूजा करनेमें अत्यंत चतुर है। इस प्रकार के शुभ भावोंसे जो सुशोभित है वह धीरवीर मनुष्यगति में जाकर जन्म लेता है।

प्रश्न—मनुष्यगतिमें कितने कालतक रहना पड़ता है?

उत्तर—भोगभूमिकी अपेक्षासे उत्कृष्ट तीन पल्य वर्ष, कर्मभूमि व विदेह क्षेत्रकी अपेक्षासे एक कोटी पूर्वकाल और जघन्य अन्तर्मुहूर्तकाल तक रहना पड़ता है। मध्यम विकल्प असंख्यात हैं।

प्रश्न—भोगभूमि किसे कहते हैं?

उत्तर—जिस स्थानमें असि, मसि, कृषि, वाणिज्यादि षट्कर्मोंमेंसे जीवनोपाय करनेकी आवश्यकता नहीं है, केवल पानांग भोजनांगादि दशविध कल्पवृक्षोंसे इच्छित द्रव्य, घर, आहार, वर्तन इत्यादि सब भोगोपभोग मिलते हैं, ऐसे सुखमय स्थानोंको भोगभूमि कहते हैं।

प्रश्न—विदेहक्षेत्र किसे कहते हैं?

उत्तर—जहां जीव असंख्यात वर्षकालके आयुको पाकर,

थी तीर्थंकरोंके चरणकमलोंकी साक्षात् सेवा करनेकी योग्यता प्राप्त होती है उस विदेहक्षेत्र कहते हैं। वह विदेह क्षेत्र इस जम्बूद्वीपके बीचमें है। वहांपर अनवरत धर्मोपदेश होता रहता है। और पुण्यजीव ही वहां उत्पन्न होते हैं। इस पंचमकालमें भरतक्षेत्रसे मुक्ति न होनेपर भी इस मनुष्य जन्मसे विशिष्ट पुण्यसंचय करके विदेहक्षेत्रमें जन्म धारण करके वहांसे मोक्ष जा सकते हैं। अतः भव्य प्राणियोंको पुण्य धारणकर विदेहक्षेत्रमें जन्म लेनेका प्रयत्न करना चाहिए।

स्वर्गतिं कीदृशो जीवो याति भो सद्गुरो वद!

Question —Oh, good priest ! what kind of being goes to heaven ?

प्रश्न –हे गुरो! अब यह बतलाइये कि स्वर्गगतिमें कैसा जीव जाता है?

भोगाच्चवीराच्च अनाद्विरक्तो, दशामनी [illegible]
सम्यक्त्वयुक्तश्चरमागमेन ,स्वाध्यायशील [illegible]
निजात्मशुद्धिं स्वपरोपकारं, कर्तुं सदा [illegible]
पूर्वोक्तमार्गैरिति यश्च युक्त , स एव [illegible]

संस्कृतार्थ—[illegible]
[illegible] गृहस्थ , सद्गुरुविहित , [illegible]
स्वाध्यायसप्तत्वादिकार्ये [illegible] , निजात्मविशु[illegible]
कर्तुं सदा उद्युक्त , स [illegible]

Only that fortunate being [illegible] heaven, who is free from enjoyme[illegible] observes the five vows in some [illegible] completely (महाव्रत), who belie[illegible] against religious principles, who [illegible]

religious books who does pennance, who always tries to keep his soul pure and tries to do good to others, and one who possesses the feelings mentioned above (0 10)

अर्थ—जो मनुष्य संसार शरीर और भोगोंसे विरक्त है, जो देशव्रती है वा सकलव्रती है, जो सम्यग्दर्शनसे सुशोभित है, परन्तु जो चरमशरीरी नहीं है, जो स्वाध्यायमें लीन रहता है, तपश्चरणसे सुशोभित है और जो अपने आत्माकी शुद्धि, अपने आत्माका कल्याण तथा अन्य जीवोंका कल्याण करनेके लिए प्रयत्न पूर्वक सदा उद्योग करता रहता है, इस प्रकार जो ऊपर लिखे शुभ भावोंसे सदा सुशोभित रहता है वही भव्य स्वर्ग जानेवाला समझना चाहिए।

प्रश्न—स्वर्गमें रहनेवाले जीवोंकी कितनी स्थिति है?

उत्तर—उत्कृष्टायु तत्तीस सागर वर्ष, जघन्यायु दसहजार वर्ष और मध्यम विकल्प अनेक प्रकार है।

(सागरका प्रमाण नरकगतिके वर्णनमें कहा गया है)

प्रश्न—स्वर्गमें कैसे सुख मिलते हैं?

उत्तर—स्वर्गमें अनेक देवांगना, अप्सरादि देवियोंसे उत्पन्न सुख देवगण भोगते हैं, वहां कृष्यादि आरम्भक्रिया नहीं है। जब वहां उत्पन्न होते हैं तभी सोलहवर्षके युवकके समान उपपाद शय्यासे उठ बैठते हैं। तभी सभ्य देवांगनायें रत्नवस्त्राभरणोंको लेकर दास दासी वगैरे आकर सामने खडे होते हैं। दश विध कल्पवृक्षोंसे जो चाहे वस्तु मिलते हैं। जो सम्यग्दृष्टि देव हैं वे अपने विमानमें बैठकर अनेक तीर्थस्थान नंदीश्वर आदि

द्वीपोंमें और जहां २ अकृत्रिम चैत्यालय हैं, वहां पहुंचकर वंदना करते हैं। विशेष पुण्यसे देवेंद्रपद मिलता है। सातिशय पुण्यसे यह जीव दूसरे भवसे मोक्षको प्राप्त करने योग्य लौकांतिक देव या अहमिंद्र पदको प्राप्त करता है। अपनी आयुमें छह महिने अवशेष रहनेपर उन देवोंकी पुष्पमाला आभरणादिकोंकी कांति कम हो जाती है, तब उनको अपरिमित दुःख होता है। लेकिन सम्यग्दृष्टियोंको यह दुःख नहीं होता है। सम्यग्दर्शनके फलसे स्वर्ग मिलता है। शुभकार्योंके फलसे भवनवासी आदि देव होते हैं। अतः सम्यग्दर्शन प्राप्त करके अतिशय पुण्य पाकर मोक्ष प्राप्तिके लिए प्रयत्न करना चाहिये।

• कीदृशः पुरुषो लोके मोक्षं गच्छति भो गुरो !

Question —What kind of man obtains the final beatitude ?

प्रश्न—हे गुरो ! इस संसारमें कैसा मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है?

महाव्रतं वा समितिं दधानो, निजात्मनिष्ठश्चरमांगधारी ।
वर्तुं स्वराज्यं यतते सदैव, स्वात्मानुभूत्या स्वपदेऽस्ति लीनः ॥
ध्यानेन शुक्लेन च कर्महन्ता द्रष्टा प्रयाद्वा च निजात्मना य ।
पूर्वोक्तभावैरिति यश्च युक्तः स एव योगी भुवि मोक्षभागी ॥

संस्कृतार्थः—यश्च मानवः पंचमहाव्रतं धारयन् पंचसमितिं पालयति, स्वात्मानन्दलीनः, चरमशरीरधारकः, स्वात्मपदं प्राप्तुं यतते, स्वानुभूतिं चानुभवति, शुक्लध्यानानलेन कर्मेन्धनं दहति, आत्मना दृष्टा प्रबोद्धा च स स्वात्मजन्यविशुद्धभाववलेन मोक्षमाश्रयति तथा च अनंतकालपर्यंतं परमानन्दपरिपूर्णं स्वराज्यमधिगच्छति ॥ ११-१२ ॥

Only that fortunate being on this world is fit

to get the final beatitude who observes the five vows completely or who follows the five rules of behaviour (समिति) who is obsorbed in his soul who follows the religious principles who always tries to get independence, who is inclined in his own experience and his own position (Station) who destroys the evil deed by his pure meditation, who sees and advises his own soul, and one who possesses the things mentioned above (11 12)

अर्थ —जो मुनि महाव्रत व समितिको धारण करते हैं, जो अपने आत्मामें सदा निमग्न रहते हैं, चरमशरीरी हैं, जो मोक्षरूप स्वराज्य प्राप्त करनेके लिए सदा प्रयत्न करते रहते हैं स्वात्मानुभूति और स्वात्मपदमें सदा लीन रहते हैं। जो शुक्ल ध्यानके द्वारा कर्मोंका नाश करनेवाले हैं और अपने शुद्ध आत्माके ज्ञाता द्रष्टा हैं, इस प्रकार जो मुनि शुद्धभावोंसे सुशोभित हैं व ही मुनि इस संसारमें मोक्ष जाते हैं।

प्रश्न—मुनियोंके आवश्यकीय मूलगुण कितने हैं ?

साधुके लिए निम्न लिखित अट्ठाइस मूलगुणोंका पालन करना अनिवार्य है।

[१] अहिंसा महाव्रत—पूर्ण अहिंसा धर्मका पालन करना [२] सत्यमहाव्रत—पूर्ण सत्यधर्मका पालन करना, [३] अस्तेय महाव्रत—पूर्ण अस्तेयधर्मका पालन करना, [४] ब्रह्मचर्यमहाव्रत—पूर्ण ब्रह्मचर्यधर्मका पालन करना, [५] अपरिग्रहमहाव्रत—पूर्ण अपरिग्रहधर्मका निर्वाह करना, [६] ईर्यासमिति—प्रयोजन जन्तुरहित मार्गसे चार हाथ जमीन देखकर चलना, [७]

भाषासमिति—निर्दोष वचन बोलना, [८] एषणासमिति—शुद्धभोजन जो गृहस्थने अपने लिए तयार किया हो, उसे भिक्षा रूपसे भक्ति एवं निःस्वार्थ भावसे दिये जानेपर ही लेना [९] आदाननिक्षेपणा समिति—अपना शरीर और अन्य वस्तु भी कुछ भी हो उसे देख-भालकर उठाना एवं रखना, [१०] प्रतिष्ठापना समिति—मलमूत्रादिका त्याग जीवरहित स्थानमें करना [११] चक्षुनिरोधव्रत—सुन्दर और असुन्दर दर्शनीय वस्तुओंमें रागद्वेष तथा आसक्तिका त्याग करना, [१२] कर्णेन्द्रियनिरोधव्रत—सुंदर और असुंदर स्वरमें विरक्ति एवं आसक्तिका परिहार [१३] घ्राणेन्द्रियनिरोधव्रत—सुगंध तथा दुर्गंधमें राग-द्वेषका त्याग करना, [१४] रसनेन्द्रियनिरोधव्रत—जिह्वाकी लोलुपताका त्याग करना [१५] स्पर्शनेन्द्रियनिरोधव्रत—मृदु रूक्ष आदि आठ प्रकार के दुःख अथवा सुखरूप स्पर्शमें हर्ष विषादसे वंचित रहना [१६] सामायिक—जीवन-मरण, संयोग-वियोग, सुख-दुःख आदि में राग-द्वेष रहित समभाव रखना [१७] स्तवन [१८] वंदना, [१९] प्रतिक्रमण—किये गये दोषोंको शोधना [२०] प्रत्याख्यान—आगामी कालके लिए अयोग्यवस्तुका त्याग करना, [२१] कायोत्सर्ग, [२२] केशलोंच—तीन चार महिने हिम्मत सावधान पूर्वक अपने हाथसे मस्तक एवं मूछके बालोंका उखाड़ना [२३] नग्नता—वस्त्र, चर्म, तृण आदिसे शरीरको न ढकना अर्थात् दिगम्बर वेषमें जीवन बिताना [२४] अस्नान—स्नान, उबटन लेपन आदिका त्याग करना [२५] क्षितिशयन—जीव बाधारहित शुद्ध प्रदेशमें दण्ड अथवा धनुषाकार स्थान ... थोड़े समयकेलिए सोना [२६]

मंजन आदिसे दंतधावन नहीं करना [२७] स्थितिभोजन—अपने हाथोंको पात्र बनाकर दीवाल आदिका सहारा न लेकर चार अगुलके अंतरसे सम-पाद खड़े होकर शुद्धतासे आहारग्रहण करना [२८] एकभुक्त—सूर्यके उदय और अस्तकालकी तीन घड़ी छोड़कर एकबार भोजन करना।

इस प्रकार अट्ठाइस मूलगुणोंको धारणकर बाईस परीषहों का भी शांत हृदयसे जीतना चाहिए।

प्रश्न —मोक्ष किसे कहते हैं ?

उत्तर —यह आत्मा जब ज्ञानावरणादि आठ कर्मोंका नाश कर, इस संसारबंधनसे पार होकर, अनंतज्ञान, अनंतदर्शनादि आठ जो गुणोंको प्राप्त करता है उसे मोक्ष कहते हैं। श्रीउमा स्वामी आचार्यवर्यने ऐसा कहा है कि 'कृत्स्नकर्मविप्रमोक्षो मोक्षः' यह मोक्ष लोकके अग्रभागमें है। उस स्थानको प्राप्त करनेपर यह जीवात्मा परमात्मा हो जाता है। वह फिर जन्ममरणरूप संसारमें आकर दुःख नहीं भोगता है। उस स्थानको प्राप्त करनेके बाद राग, द्वेष, मद, मात्सर्यादि विकार उस आत्मामें उत्पन्न नहीं होते हैं। जिस प्रकार एक बीजको जलानेपर फिर उसमें अंकुरोत्पत्तिकी योग्यता नहीं रहती है, तद्वत् उस आत्मा में रागद्वेषादि विकारभाव उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। अन्य संप्रदायवाले मोक्ष पदार्थका स्वीकार तो करते हैं, परन्तु फिर वहांसे कभी न कभी इस संसारमें जीवको आना पड़ता है ऐसा कहते हैं। यदि यह बात है तो उसमें वह यथार्थ सुख नहीं है। क्यों कि उसके बाद दुःख समुद्रमें फिर पड़ना पड़ता है। परन्तु

अनेकांतवादी (जैन) मोक्षके स्वरूपको ऐसा नहीं मानते हैं। जैनमतके अनुसार परमात्मा अनंतानंतकालतक परमपदपरसे पर रहकर सुख भोगता है।

ऐसे परम पवित्र स्थानको प्राप्त करना प्रत्येक मनुष्यका कर्तव्य है और उसके लिए अवश्य ही प्रयत्न करना चाहिए। यही आत्मकल्याणकी व जीवात्माकी उन्नतिकी पराकाष्ठा और अंतिम ध्येय है।

आत्मकल्याण चाहनेवाले भव्य जीव सद्गुरुओंके पादमूलमें जाकर सद्धर्मोंको श्रवण करें एवं आत्मकल्याणके साधक मार्गका अवलंबन करें। यह आत्मा अनादिकालसे कर्मबद्ध होकर क्रोधादि विकारोंमें सुखानुभव करता हुआ आ रहा है। आत्माको उन कर्मोंसे मुक्त होनेके लिए एक निश्चय है। वह ही काललब्धि कहते हैं। केवल आंख मीचलेनेसे मोक्ष नहीं मिलता है। उसके लिए देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, संयम, तप, दान आदि शुभकार्योंका अवश्य ही उपयोग करना चाहिए। मनके मलीन इंद्रियजन्य विषय भय, कायक्लेश करके अनशनादि तपोंका अभ्यास करना चाहिये। ये सब आत्मामें विद्यमान कषायोंके निर्मूलित करनेके लिए और शुभपरिणामोंके बढ़ानेके कारण हैं। शुभपरिणामोंकी वृद्धिसे आत्माके अशुभकर्म नष्ट होकर उसमें निर्मलज्ञानका विकास होता है। इन विकासोंसे आत्माको संसारकी परिस्थितिका परिज्ञान होता है। तब यह आत्मा तत्वविचार करके आत्मा और परवस्तुका [illegible] मनन करने लगता है और धन दारादि पदार्थोंको और

ज्ञानादिगुण शाश्वत और उपादेय इस प्रकारका ज्ञान होता है परद्रव्यमोहसे व्याप्त हुए निज गुणोंको प्राप्त करनेके लिए गुरुओंके उपदेशानुसार प्रयत्न करता है। आगममें वर्णित मार्गसे कर्मपरतंत्रताको दूर करके आत्माके निजगुणोंको प्राप्त करता है। इसी अवस्थाको प्राप्त या स्वराज्य कहते हैं। ऐसे स्वराज्यको प्राप्त करनेके लिए हर एक भव्यप्राणी अनवरत अवश्य प्रयत्न करें।

स्वराज्य प्राप्तिके सरल मार्गको " बृहत् बोधामृतसार " में विस्तारसे वर्णन किया है, वहांसे जान लेना चाहिए। यहांपर संक्षेपसे दिग्दर्शन मात्र किया है।

इस प्रकार परमपूज्य, प्रातःस्मरणीय, विश्ववंद्य, नरेंद्रपूज्य,
चारित्रचूडामणि आचार्य श्रीकुंथुसागर महाराज—
विरचित लघुबोधामृतसार समाप्त हुआ।

समाप्तः।



श्री १०८ आचार्य कुंथुसागर महाराजकी

★ पूजा. ★

[रचयिता—धैर्यराज व भागचन्द्रजी मग]

स्थापना—(अडिल्ल छन्द)

धन्य घड़ी धन्य आज धन्य मम भाग्यता,
देख कुन्थु छवि परम सौम्य गुरुदेवकी।
त्रि-रत्नधारी मिट धन्य भावन करें,
भविगण सुनत हृदयमें आनन्द अति भरे ॥१॥
भवदधि तारण उपाय तरणि कल्याणिये,
हृदयपुष्पमें आप बसाँगे मानिये।
आह्वानन स्थापन सन्निधिकरणमें,
रत्नत्रय वरदान देउ भवि शरणमें ॥२॥

ॐ ह्रीं आचार्यवर कुन्थुसागर स्वामिन् अत्र अवतर अवतर संवौषट्। इत्याह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठ ठ स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

क्षीरोदधि सम स्वच्छ, शीतल सुखकारी,
श्री गुरु जिन नीर चढ़ाय, जनम जरा हारी।
श्री कुन्थुसिंधु गुरुदेव, जगमें हितकारी,
आनन्दसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥१॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिने जन्मजरामृत्यु विनाशाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ।

केशर कर्पूर मिलाय, चंदन संग घसें,
शांति मिल सब आन चढाय, भव आताप नसें ॥
श्रीकुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥२॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यवर श्रीकुंथुसागरस्वामिने संसारताप– विनाशाय चंदनम् ।

शुभ तंदुल चंद्र समान, अक्षय सुखकार,
चरणोंमें पुंज चढाय, सब ही दुख टारें ।
श्री कुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥३॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिने अक्षयपदप्राप्तये दिव्याक्षतं ।

चम्पा अरु जुही गुलाब, गेंदा मरुवाके,
ये काम–बाण नश जाय, भट चरु ल्याके ।
श्री कुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज मिल सब नरनारी ॥४॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिने कामबाणविनाशाय दिव्य पुष्पं ।

खु मवर घावर आदि, फेनी थाल भरें,
यह क्षुधा वदनी नाश, गुरुसे विनय करें ।
श्रीकुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥५॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिन क्षुधारोगविनाशाय दि नैवेद्य ।

मणिमय दीपककी राशि, मनहीं तिमिर कटे ।
[illegible] जगमग ज्योति अपार, ज्ञानकला प्रकटे ।
श्री कुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥६॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिन मोहांधकार-विनाशाय दि० दी० ।

ले मनहर धूप अनूप, हुताशन खेप करें,
वसु कर्म काष्ठ जर जांय, सब मिल अर्चा करें ।
श्री कुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥७॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिन अष्टकर्मदहनाय दि धूपं ।

श्रीफल अरु दाख बदाम, पिस्ता सुखकारे,
शिवतियफल पावन हेतु, ल्यावें अति प्यारे ।
श्री कुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज मिल सब नरनारी ॥८॥

ॐ ह्रीं श्री आचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिन मोक्षफलप्राप्तये दि फलं ।

जल चंदन अक्षत पुष्प, नवज अति ताजे,
ले दीप धूप फल, अर्घ 'आनंद' अघ भाजे ।
श्रीकुंथुसिंधु गुरुदेव, जगके हितकारी,
आनंदसे पूजें आज, मिल सब नरनारी ॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीआचार्यवरश्रीकुंथुसागरस्वामिन अनर्घ्यपदप्राप्तये दि अर्घं ।

अथ जयमाला

— दोहा —

कुंथुसिंधु गुरुवर महा, जग जनके प्रतिपाल ।
हर्षित हो आनंद युत, गावें गुण गण माल ॥

पद्धरी छन्द

जय कुन्थुसिंधु गुरुवर सुजान,
आतम हित तप करते महान ।
जय तेरह विध चारित्र पाल,
भवसिंधु तार गुरुवर दयाल ॥१॥
जय उत्तम शुभ दश धर्म पाल,
भवि जन लखि छवि होते निहाल ।
जय जय जिनमत दीक्षा सुधार,
निर्भय निशंक करते विहार ॥२॥
जय ध्यान सुथिर मुद्रा सुदेख,
भविगण सब मेटत कर्म रेख ।
जय राग द्वेष चितमें न ठान,
धर्मामृत वर्षायो महान ॥३॥
जय बोधामृत वर ग्रंथ जान,
की ज्ञानामृत रचना सुखान ।
चतुर्विंशति आदि अनेक ग्रंथ,
सत्कृतमें जो कल्याण पंथ ॥४॥
जय धन्य धन्य श्री कुन्थु पाल,
मनमोहक रचना की विशाल ।

जय धर्म मर्म में बहु प्रवीण,
लखि ज्ञान समा आश्चर्य कीन ॥५॥
जय क्रोध मान माया विहीन,
अरु मोह रागको करत छीन।
भवसागरमें हैं दुख अपार,
तिनको तुम मेटो जगतपाल ॥ ६ ॥
जय ऐनापुरमें जन्म ठान,
सातप्पा श्रीके रत्न खान।
जय धन्य सरस्वती देवि माय,
श्रीशांतिशिरोमणि सुगुरु पाय ॥ ७ ॥
जय शिवसुंदरि को करत ध्यान,
सब ही को देत ज्ञान दान।
जय भारतवर्ष विहार कीन,
श्रावक बोधे क्रिया विहीन ॥ ८ ॥
जय परम धुरंधर धर्म खान,
चपकायो जिन वृष किरण भान।
उपदेशामृत से सींच सींच,
सबोधे भवि जन खींच खींच ॥ ९ ॥
जय जय जग विभु करुणा निधान,
गुरु सुखद मूर्ति गुण पुञ्ज खान।
उपकार किये जगके विशेष,
बहु गुण गायें गुणिजन हमेश ॥ १० ॥
जय धर्म दिवाकर रत्न खान,
भो गुरु मिथ्यातम हरन भान।

जय मन्मथ-हारी परम धार,
वर्षाया जगमें धर्म नीर ॥ ११ ॥
जय साधु सुपदका मन्त्र जाप,
मगल उत्तम हैं शरण आप।
ससार कष्टका करत नाश,
सब पूर मन वांछित सु आश ॥ १२ ॥
जय विश्व उधारन दुख निवार,
तप तपन कर्म का करत क्षार।
जय जय जयवंतो गुरुदयाल,
श्री कुंथु सिंधु गुरुवर विशाल ॥ १३ ॥
जय बलिहारा गुणगण कृपाल,
सब राव रंक आ नमत भाल।
जय चरणवंदना करत आन,
राजा महाराजा भक्ति गान ॥१४॥
तव गुणमहिमा अद्भुत अपार,
हम अल्पबुद्धि किम लहें पार।
आनंददास चिर नमत भाल,
मेटो गुरुवर ये दुखद् जाल ॥ १५ ॥
ससार विषय य खार खार,
दुक चरण विनय कीजे उबार।
पूजें पदे मन वचन काय,
जल गंधादिक वसु द्रव्य लयाय ॥१६॥
जय आदि सिंधु मुनिराय चीन।
श्रीगुरु सेवा भक्ति करत लीन—

जय अजित सिंधुगुणधर महान ।
श्रीदेवसिंधुमुनि गुणगण निधान ॥ १७ ॥

एलकवर बाहुबली महान,
ब्रह्मचारी जिनदास सुजान ।
सब संघसहित करते विहार,
भवि जीवनके जीवन सुधार ॥ १८ ॥

घत्ता

जय गुणगण भद्रा धम समुद्रा, आतम मुद्रा सुखकारी ।
साधुगुण तपोधन, कर्म हनो मम पूजत भवि जन हितकारी १९

॥ इति पूर्णार्घ्यम ॥

घत्ता

जे पूज रचावें गुणगण गावें, आतम ध्यावें नर नारी ।
ते पुण्य बढावें शिवपुर जावें, आनंद पावें अविकारी ॥२०॥

॥ इत्याशीर्वाद ॥

घोर तपस्वी श्रेष्ठ मुनि, आदिसिंधु मुनिराज,
अर्घ्य लेय पूजा करूं, पार करो गुरुराज ।
ॐ ह्रीं श्री मुनि आदिसागरस्वामिने अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा ।
अजितसिंधु मुनिरायको, पूजों अर्घ्य चढाय,
पुण्यवृद्धि हो जगतमें पाप सब नासि जाय ।
ॐ ह्रीं मुनि श्रीअजितसागराय अर्घ्य निर्वपामीति स्वाहा ।
देवसिंधु मुनिराजको चरणनि अर्घ्य चढाय ॥
मैं पूजूं शुभभावसे दुष्ट कर्म नासि जाय ॥
ॐ ह्रीं देवसागराय अर्घ्यं नि

आरती.

जय कुंथुस्वामी गुरु जय कुंथुस्वामी ।
आरती करू तुम चरण, आरती करू तुम चरणे ।
निशदिन शिश नामी, जय देव जय देव ॥१॥
ऐनापुर नगरी मध्ये, सातप्पा पिता, गुरु सातप्पा पिता ।
माता सरस्वति कुखे [२] जनम्या गुरुदाता ।
जयदेव जयदेव, जय कुन्थु स्वामी । जयदेव० ॥२॥
शांति-सागर श्री गुरुचरणे शिश नामी गुरु चरणे
शिश नामी ॥
आप थयो वैरागी [२] सद्गुणना धामी ॥
जयदेव जयदेव, जय कुंथुस्वामी ॥ जयदेव ॥३॥
दीक्षा लीधी गुरुदेवा-आश्रव जळतरवा-गुरु आश्रव
जळतरवा ॥
ज्ञानामृत बरसावो [२] शिवरमणी वरवा । जयदेव
जयदेव, जय कुंथुस्वामी । जयदेव ॥४॥
बोधामृत ज्ञानामृत-ग्रंथ नवीन सारो (गुरु)
रचिया पूरण भांत [२] सुद्गुणना धारी । जयदेव
जयदेव जय कुन्थुस्वामी—जयदेव ॥५॥
व्याख्यानो विधाविध, आप सदा करता (गुरु)
सौ समाज दुख हरता (२) वाणी उचरता । जय० ज०
जय कुन्थुस्वामी—जयदेव ।६॥
श्रीगुरुनी सेवा—ज भावे करता [गुरु]
कहे चुनीलाल सेवक (२) भवसंकट हरता । जयदेव
जयदेव जय कुंथुस्वामी—जयदेव ॥ ७ ॥

—०—

निवेदन.

जो श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रंथमालाके उपलब्ध सर्व ग्रंथोंका स्वाध्याय करना चाहते हैं वे १०१) देकर ग्रंथमालाके स्थायी सदस्य बनें। स्थायीसदस्योंको ग्रंथमालामें प्रकाशित व प्रकाश्य सर्व ग्रंथ बिनामूल्य दिये जाते हैं।

निवेदक—
मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला
सोलापुर.

THE OBJECT OF ESTABLISHING GOD'S IDOL

It is evident that man forms a sort of similar complex in his mind from a picture or a photograph placed before him There is no need of guessing or thinking on this matter This is known by all children as well as men Hence there is a necessity of having a like picture before us, of the extra ordinary personality We can make our life happy by behaving in a manner similar to that of the personality Hence it is our life-long duty to think of the different states of the great personality (God) We should meditate and worship it This alone is the object of idol worship that we should follow the model of God in order to achieve the best qualities which are found in him (37 40)

अर्थ—निरञ्जन निर्विकार भगवान् की निर्विकार मूर्ति स्थापना [illegible] राग, द्वेष, मोह से दुःखी संसारी जीवों को शान्ति और आराम मिलता है, उस परम कृपालु के कार्यों की याद आती है, सदा हृदयमें उस प्रभु के आकार [छवि] और गुणों का स्मृति के सहारे से धारण किया जाता है और उसके ध्यानसे खुद को तादृश [उसके समान] बनाने की इच्छा से ही मूर्तिकी भक्ति और वन्दना की जाती है, यही मूर्ति स्थापना का समीचीन

भावार्थ—यह प्रमाण सिद्ध बात है कि सामने जैसा चित्र या फोटो होता है, तदनुकूल ही मनकी वृत्ति होती है। इसके लिए तर्क वितर्क की कोई आवश्यकता नहीं है। यह बाल गोपाल सब ही मानते हैं। इसलिये इन अवतारी पुरुषोंका चित्र जो है सो सामने रखने की आवश्यकता है जिसको समय ये जन्मसे लेकर निर्वाणपर्यंत जो २ उन्होंने कर्तव्य किये हैं उनकी भिन्न अवस्था की चित्रमूर्ति का ज्ञान, ध्यान, पूजन करके तदनुकूल ही आचरण करनेसे हम अपने जीवनको सुखी बना सकते हैं। मूर्तिपूजाका उद्देश्य सिर्फ यही है कि उनके द्वारा उस मूर्तिमान देव के अनुरूप और अष्टगुणोंको अपने जीवनमें उतारकर संसार के समक्ष अनुकरणीय आदर्श उपस्थित करें।

स्फुट विवेचन—जैसे किसी बालकको अश्व, गजादिक का ज्ञान कराना हो तो उसके सामने उनका ही चित्र रखकर उन्हींका गुणधर्म बताना होगा, अगर बिलाव आदि का चित्र रखकर उनका गुणधर्म बताया जायगा तो अश्व गजादिक का ज्ञान कदापि न होसकेगा। या भारतदेश का भूगोलिक ज्ञान कराने के लिये योरप का नकशा सामने रक्खा जायगा तो भारत का ज्ञान कदापि न होसकेगा, उसके लिये भारतका नक्शा ही रखना होगा। इसी प्रकार अवतारी पुरुषों की प्रत्यक्ष अवस्था का ज्ञान कराने के लिए तद्वत् मूर्ति की आव

श्यकता है, तभी उसका वास्तविक ज्ञान हो सकेगा। आज कल जो मतमतान्तर हैं वह सब वास्तविकताके न समझने के अभाव का फल है। कारण एक एक अंग सबने लिया है वह सत्य जरूर है, परन्तु पूर्ण नहीं है। अगर क्रमसे प्रतिदिन सुबह से शामतक सब अवस्थाओंका आरोपण किया जाय तो यथेष्ठ फल की प्राप्ति हो सकेगी व सारे जगत्‌का एक धर्म होगा। जिस समय भगवान्‌का अभिषेक किया जाता है उस समय जन्म कल्याणक का आरोपण किया जाता है वह बाल्य अवस्थाका भगवान् है व उसे बालपभोला भी कह सकते हैं। उस समय पञ्चामृत अभिषेक, गन्ध लगाना अनेक प्रकार के सुवासित पुष्प जैसे चम्पा चमेली, गुलाब मोगरा, जुही आदि चढ़ा सकते हैं और वस्त्र आभूषण अलंकार भी भगवान् की प्रतिमा को पंचकल्याणकादि यही विधिमें धारण कराये जा सकते हैं। और फिर अष्ट द्रव्यसे पूजा भी की जा सकती है। पूजामें फल फलादिक सब प्रासुक द्रव्य ही काममें लेना चाहिये। सौधर्मेंद्र और शची नामा इन्द्राणी बाल्यावस्था के भगवान् की गाढभक्ति, पूजा आदि करके एकभवावतारी हो गये हैं। भक्ति ही मुक्ति की दाता है।

॥ भगवानके दर्शन करने का उद्देश ॥

जन्म कल्याणकके समय या राज्याभिषेक अभिषेक करते समय निम्न प्रकार भावना भानी चाहिये।

हे प्रभो ! पूर्वजन्ममें आपने विश्वसेवा करने की भावनाको अपनाया था और जगत्के हितार्थ समस्त वैभव को छोड़ कर अपना तन मन धन सर्वस्व अर्पण किया था । इसलिये आज आप जगत्पूज्यपद को प्राप्त होगये हैं । तीनभुवनके समस्त नागेन्द्र, इन्द्र, चक्रवर्ति आदि महान् २ पुरुष आपके चरणकमलोंकी सेवामें संलग्न होकर मधुकरके भाव को प्राप्त हो रहे हैं । धर्मोत्सुक हो रहे हैं । सुरेंद्रादिक आपकी भक्ति कर अपनेको कृतकृत्य मानते हैं । भूचर, खेचर समस्त मांडलिक राजा गण आपकी सेवा कर अपने नरजन्म को सफल मानते हैं और आलौकिक राजसी वैभवको प्राप्त करते हैं । यह सब आपके सातिशय पुण्यको प्रगट करता है । यहांतक कि आपके अवतरण होने के समय नरक समान अशुभ क्षेत्रमें भी, जहां निरन्तर मारण, ताड़ण, छेदन के सिवाय और कुछ सुनने देखने को भी नहीं मिलता है, क्षणभरके लिये शान्तिका साम्राज्य छा जाता है । आपके वचनातीत पुण्यसे प्रभावित होकर सौधर्मेंद्र और शची नामा इन्द्राणी आपकी भक्ति और सेवा में इतने तन्मय हो जाते हैं कि मुक्तिरूपी नगरीमें प्रवेश करनेके लिये उन्हें पासपोर्ट (टिकिट) मिल जाता है । अर्थात् वे एक भवतारी बनकर अनादि कालीन संसार का अंत कर देते हैं । वे प्रत्येक कार्य को सिर्फ शब्द के

द्वारा न कहकर संसार के सामने अपनी निर्भीक और पवित्रकार्यका आदर्श रखते हैं। प्रत्येक प्राणीके जीवनका यही स्वाभाविक ध्येय होना चाहिये। अगर वह अपनी आत्मा का पतन से बचाकर उन्नत और विकासमय बनाना चाहता हो तो निरन्तर इसका उपाय करते रहने से यह कार्य अति सुलभसाध्य बन सकता है।

भगवान् राज्यावस्थामें हों तो निम्न भांति विचार करना चाहिये। हे प्रभो! पूर्वभवमें आपने हृदयको ज्ञान रूपी जलसे सिंचन करके समस्तकालमें विश्व उद्धारके पतितपावन इस अहिंसाधर्म (या जैनधर्म) की भावना को प्रत्येक मानवकी नस नस में कूट कूट कर भरने का घोरातिघोर प्रयत्न किया था और भूमण्डल पर समस्त भूपतियोंको किस प्रकार इस अहिंसा सिद्धान्तका अनुयायी जानकर उसमें नियोजित करूं और प्राण रक्षा करना है लक्षण जिसका ऐसा समीचीन धर्मका प्रचार किस प्रकार करूं और इस संसारसे अन्याय और अत्याचारका नामनिशान मिटा दूं। ऐसी उत्तम और शुभ भावनाओंको अपनानेसे पुण्यानुबन्धी पुण्यको उपार्जन कर आपने तीर्थंकर पदको प्राप्त किया है जिसका वर्णन इन्द्र का गुरु बृहस्पति भी करनेमें असमर्थ हैं तो औरोंकी क्या बात? उस पुण्यसे खिंचे हुए बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा आपके चरणोंमें लोटते हैं। आपकी आज्ञाकी

प्रतीक्षा करते हैं। आपके अनुग्रहकी भीख माँगते हैं। आपकी सेवा करनेमें अपने नरजन्मकी पूर्णता समझते हैं और अनेकानेक अनुपम रत्न आपको समर्पित करते हैं। यह सब पूर्वोपार्जित पुण्यका ही फल है। ऐसा जानकर प्रत्येक सत्यार्थीको अपनी विचार धारा भी इस प्रकार रखना चाहिए। और कार्यरूपमें परिणमन कर अपने जीवनमें उतारना चाहिए।

दीक्षा ज्ञान और मोक्षकल्याणके सन्मुखमें दर्शन करते समय मनन योग्य विषय.

[१] हे प्रभो! आप पांवपर पांव धरके क्यों विराजमान हैं? पदपर पद धरनेका आपका आशय यही होना चाहिए कि संसारमें अर्थात् तीन लोक और तीन भुवनमें चलन फिरने योग्य सब स्थानोंमें चल फिर चुके। लोकाकाशमें एक भी प्रदेश ऐसा नहीं बचा कि जिसपर चलना फिरना नहीं हुआ हो। तात्पर्य यह है कि इस कार्यसे पूर्ण निवृत्त हो चुके हैं। इसलिए पांवपर पांव धरके विराजमान हो। व्यवहारमें भी यह प्रचलित रिवाज है कि माँ, बाप, बेटी जब घरका सब कार्य कर चुकती हैं तो पांव पर पांव धरकर बैठ जाती हैं।

[२] हे प्रभो! आप हाथपर हाथ रखके क्यों विराजमान हो? हस्तपर हस्तको आरोपित करनेका आपका

अभिप्राय यही मालूम पड़ता है कि करने योग्य सर्व कार्योंसे आप फुरसत पा चुके हैं। आपके लिए कोई भी कार्य करना बाकी न रहा। आप पूर्ण कृतकृत्य हो चुके हैं।

(३) हे प्रभो ! आप आंख बंदकर नासाग्र दृष्टिकर क्यों विराजमान हो ?

आंख बंदकरने का आपका ध्येय यही होना चाहिए कि देखने योग्य सर्व पदार्थ आप देख चुके हैं। संसारमें कोई भी पदार्थ ऐसा न रहा जो आपके ज्ञानचक्षुके गोचर न हो रहा हो। सर्व आशा भी आपकी पूर्ण हो चुकी है। इसलिए आप सौम्यदृष्टिको धारण किए हुए विराजे हैं। आशावान्‌ही विशालनेत्रोंसे प्रसिद्ध पदार्थोंके मध्य अवश्य चलायमान होते हैं, परन्तु इससे आप बिलकुल रहित हैं।

(४) हे प्रभो ! आपने अस्त्र, शस्त्र, वस्त्र, आभूषण अलंकार आदि सबका परित्याग क्यों कर दिया है ?

आपका कोई शत्रु नहीं और आप अत्यंत निडर अपने आत्मस्वरूपमें अचल स्थित और अडिग हो, इस लिए आपको शस्त्रास्त्रकी आवश्यकता नहीं।

वस्त्र, आभूषण, अलंकार, स्नान, गन्धविलेपन आदि सब भोगोपभोग सामग्री हैं। संसारमें कोई भी पदार्थ ऐसा न रहा जो आप के भोगनेमें न आया हो। आप तो अपने

शाश्वत आत्मजनित स्वराज्यका भोगनेमें मग्न हैं, इन क्षणिक भोगोपभोग पदार्थोंमें आपको क्या प्रयोजन है ? जब आप बाल्यावस्था या बालक्रीडावस्थामें और राज्यावस्थामें थे तब आप इनका अनुभव कर चुके हैं और तब ये आपके लिए कार्यकारी और उपयोगी सिद्ध हुए हों, परन्तु अब निरंजन निर्विकार कृतकृत्य अवस्थामें ये आपके लिए बिलकुल अनावश्यक हैं। ये सब मोही जीवोंके लिए उपयोगी हो सकते हैं, जैसे ये आपके बाल्यावस्था और गृहस्थावस्थामें थे। इसलिए इन सबको आपने छोड़ दिया है।

सारः—प्रत्येक प्राणीके लिए अपने हृदयमें ऐसी भावनाओंको स्थान देना चाहिये। यहाँ पर इतना लिख देना और भी जरूरी है कि केवल विचारों और भावनाओंसे ही काम न लेकर अवस्थानुसार प्रत्यक्ष कार्यको मन, वचन और काय द्वारा करके उदाहरण स्वरूप आदर्श रखना चाहिए। यही एक मात्र देवदर्शन करनेका फल और उद्देश है। इसके बिना सब क्रियाएं उद्देश्य हीन, निष्प्रयोजन मूलरहित, अंकके बिना शून्यके समान हैं।

हे भगवन्! जो कोई आपका अनुकरण करेगा और आपके समान विश्वव्यापक व्रतका ग्रहण करेगा और कदाचित् मैं भी अपने परम भाग्योदयसे और आपके असीम—

अनुग्रहसे आपके यथार्थिक बन सकूं तो मैं दृढ विश्वासके साथ कह सकता हूं कि मैं भी आपके समान सातिशय पुण्यका बंधकर और तीर्थंकर पदको प्राप्तकर लोक कल्याणके साथ २ आत्म कल्याणकर आपके पास पहुंच सकूंगा। इसमें रंचमात्र भी सन्देह नहीं, ऐसी भावना करके अपनी आत्माको उन्नत और उच्च बनाना प्रत्येक मानव का जन्मसिद्ध अधिकार है।

नोटः—भगवानकी मूर्तिमें जन्मावस्था, या राज्यावस्थाका आरोपण करके जो पूजा, अभिषेक, स्तुति, स्तोत्र आदि करते हैं उनको सातिशय पुण्यबन्ध अवश्य होता है परन्तु निरंजन निराकार अवस्थाका ध्येय रखना आवश्यक है और तद्वत् चित्र रखना इससे भी अत्यावश्यक है।

इसके बिना सब निष्प्रयोजन है। यह उपदेश प्राणि मात्रके लिए है। यह वीतराग अवस्था संन्यास अवस्था का चित्र सबको रखना चाहिए। इसके बिना परमात्माके रूपमें रूप मिलना नहीं हो सकता।

शान्तिः ।   शान्तिः ॥   शान्तिः ।॥

— ० —

मूर्ति पूजाकी मर्यादा

पूर्वोक्ता पूज्यते मूर्तिस्तावदेव नरामरैः ॥
स्वात्मा संसारभोगादौ, मग्नो भवति दुःखदे ॥४१॥
यदा स्वस्त्यज्य तु भोगादीन्, मग्नो भवति चात्मनि ॥
पश्चात् संत्यज्यते मूर्तिः स्वानंदसुखभागिना ॥४२॥

संस्कृतार्थ —पूर्वोक्ता निर्विकारा अपि मूर्तिः=प्रतिमा, तावदेव नरामरैः पूज्यते, यावत्स्वात्मा दुःखदं दुःखं ददातीत्येवंभूते संसारभोगादौ मग्नः पतितोऽस्ति, यदा तु भोगादीन् त्यक्त्वा आत्मा आत्मनि निमग्नो भवति तत्पश्चात्तु स्वात्मानन्दरूपं सुखं भुनक्तीत्येवंशीलेनात्मना, सा निर्विकारा अपि प्रतिमा संत्यज्यते ।

THE LIMIT OF IDOL WORSHIP

The above described idol is worshipped by men and gods, so long as their soul is engrossed in the worldly pleasures, etc., which in the end cause misery But when the soul abandons the wor'dly pleasures and thinks of itself only, the idol worship is abandoned by the person who enjoys the happiness of thinking of the purity of the soul (41 42)

अर्थ-पूर्वोक्त निर्विकारमयकी मूर्ति भी देव मनुष्यादि द्वारा तब तक पूजी जाती है या दर्शनीय होती है जबतक पूजक व दर्शककी आत्मा इस दुःखदायी संसार और

भोगोंके भोगनेमें मग्न है। परन्तु ज्यों ही यह आत्मा विषके समान विषयोंको छोड़कर आत्मामें मग्न होता है और स्वाधीन स्वात्मसुखका अनुभव करने लगता है, तब मूर्ति पूजनेकी आवश्यकता नहीं रहती।

भावार्थ –मूर्ति पूजाकी तभीतक आवश्यकता है जब तक आत्मा रागद्वेषसे मलिन है। रागद्वेषके सर्वथा नष्ट होनेपर आत्मा स्वयं परमात्मा रूप बन जाता है। संसारिक और ऐहिक इच्छाओंसे परे हो जाता है और आत्मिक रस में मग्न हो जाता है। फिर मूर्तिपूजाकी जरूरत नहीं है अर्थात् आत्मजनित स्वराज्य प्राप्त कर लेता है। मूर्ति साधनमात्र है उसको साध्य समझ लेना भूल होगी। औषधि तभीतक काममें लाना चाहिए जबतक शरीरमें रोग विद्यमान हो। रोगके नष्ट होनेपर भी औषधि सेवन करते रहना मूर्खता होगी या सूर्यके विद्यमान होते दीपक जलाना वृथा है। इसी तरह परमात्मा रूप हो जाने पर या आत्मनिष्ठ बनजाने पर मूर्तिपूजा प्रयोजन भूत नहीं होगी। इसलिए साधुसन्तोंके लिए मूर्तिका अवलम्बन विशेष कार्यकारी नहीं है।

यथाऽश्वयाचनं कृत्वा, रुदतो बालकस्य हि ॥
दद्यात् माता मुदा दद्यात् बालत्वात्तत्प्रशान्तये ॥ ४३ ॥
ददाति लोहजं माता, गृहीत्वा बालकोऽपि तं ॥
तस्योपरि स्थितो भूत्वा, तावत्स रमतेऽथवा ॥ ४४ ॥

यावदश्वं न जानाति, पश्चात्त्यजति स सुधीः ॥
इति युक्तिप्रमाणाभ्यां, पूज्या कौ प्रतिमाऽमला ॥४५॥

संस्कृतार्थः—दृष्टान्तद्वारेणोक्तमेवार्थं समर्थयन्ने यथा हि अश्वयाचनं कृत्वा रुदतो, बालकस्य–शिशो , माता–जननी, तत्स्वान्त्वप्रदा सती, सान्त्वनार्थं, लोहजं–धातुकाष्ठादिनिर्मितं, कृत्रिममश्वं ददाति–प्रयच्छति सोऽपि बालको मुदा सहर्षं दण्डं गृहीत्वा, तदुपरि आरुह्य=आरोहणं कृत्वा, किल तावत्कालं रमते= क्रीडति, यावद्धि अर्थतः=वस्तुतः , अश्वं न जानाति, यदा तु बुद्धि-प्रभावेण तत्स्वरूपं जानाति, स सुधीः तं त्यजत्येव, इत्येव प्रकारेण युक्तिप्रमाणाभ्यां, अमला=निर्दोषा, निर्विकारा, प्रतिमा, कौ= पृथिव्यां, पूज्या अर्चनीया ।

When a crying child asks for a horse, its mother, to comfort him, gives him one made of iron and the child also rides and plays with it gladly taking a stick in its hand so long as it is a child But when it grows old enough it under stands what a horse is and it no more wants it Remembering this example the holy and pure idol is worshipped in this world (43-45)

अर्थ —ऊपर कहे अर्थको दृष्टांत द्वारा स्पष्ट करते हैं कि जैसे घोडेके लिए रोते हुए बालकको उसकी माता उस राजी करनेके लिए,धातु या लकडीका घोडा दे देती है और वह बालक भी अपने शिशुसुलभ भोलेपनसे, बडी खुशीके साथ दण्डा लेकर उसपर चढता है और

नाना प्रकारकी क्रीडा करता है। किंतु जब बडा होकर बुद्धिमान होजाता है और घोडेके असली स्वरूपको जानने लगता है, तब उस बनावटी घोडेको छोड देता है। इसी प्रकार युक्ति और प्रमाणसे भगवान् की मूर्तिकी पूजा भी विधेय है। जैसे बनावटी अश्वमें भी बालकका क्रीडारूप क्रियासे मनस्तुष्टि हो जाती है वैसे ही साधारण संसारी जन भी जबतक वे परमात्माके निकट स्वरूपको नहीं पहिचान सके हैं, तबतक कल्पितमूर्तिके सहारे भी विनती, भक्ति, पूजादिद्वारा अपने भावोंको भगवान्में रमाकर अपनी भलाईके मार्गको ग्रहण कर सकते हैं।

भावार्थ—यह निर्विवाद सिद्ध है कि जबतक आत्मा कषायकर मलिन है तबतक व उस मूर्तिमतके गुणोंका अपने में आविर्भाव होनेतक ही मूर्तिके अवलम्बनकी आवश्यकता है बादमें नहीं है।

मूर्तिके सम्मुख अविवेक—

पूर्वोक्त फलदं त्यक्त्वा विधिं सन्मार्गदर्शकं।
तन्मूर्तौ विविधां कृत्वा कल्पनां क्लेशदायिनीम् ॥४६॥
तन्मूर्ते सम्मुखे स्थित्वा, कश्चिद्भार्यां धनं यशः।
केचित्पुत्रं गृहं पौत्रं, केचित्सत्ता गजादिकम् ॥४७॥
आयुरारोग्यतां केचिन्मन्त्रतन्त्रादिसाधनम्।
केचिद्राज्यं च भोगादीन् याचन्तेऽज्ञानतः सदा ॥४८॥

संस्कृतार्थ–पूर्वोक्तं मार्गदर्शकं कल्याणपथप्रदर्शकं विधिं पद्धतिं त्यक्त्वा, तस्या मूर्तेः सम्मुखं स्थित्वा विविधा नानाप्रकारा, कल्पना, क्लेशवर्द्धिनीम् विपत्तिवर्द्धिनीम् कृत्वा विधाय केचित् भार्यां भोगपत्नीं याचन्ते, केचित् धनं च, यशः प्रशंसां केचित् पुत्रपौत्रादिकं, केचित् गृहं सत्तामधिकारं गजादिपरिग्रहं, केचित् आयु–आरोग्यं, मन्त्रतन्त्रादिसाधनं केचिद्राज्यं, भोगादींश्च याचन्ते सर्वं दूरवर्त्तितमेवाज्ञानमनितरवादिति ।

Leaving aside the above mentioned manner which shows the right path some men imagine different ways which lead to trouble For standing before the idol some men always ask for a wife, wealth, success some wish to have a son, a house, a grand child while others ask for authority and affluence such as elephants, etc, some ask for life and health or a charm spell etc while some ask for a kingdom, worldly pleasures through ignorance (46 48)

भावार्थ–इस प्रकार अपने लिये सन्मार्ग श्रेयामार्गको दिखानेवाली विधिको छोड़कर अज्ञानीजन उस मूर्तिमें भी विविध प्रकारकी कल्पना करते हैं। जो केवल क्लेश बढ़ानेवाली है। उस मूर्तिके सम्मुख बैठकर कोई स्त्री, धन, अथवा कीर्ति मांगते हैं। कोई पुत्र, पौत्र, हाथी, घोड़े, घर या अधिकार मांगते हैं, कोई आयु, आरोग्य या मन्त्र तन्त्रादिकी सिद्धि मांगते हैं। कोई राज्य तथा भोग आदि मांगते रहते हैं, यह सब अज्ञानचेष्टायें हैं।

भावार्थ —ईश्वरकी भक्ति ईश्वर तुल्य बननेके लिए ही की जाती है। भगवानने स्वयं कहा है कि जो मेरे समान होना चाहता है उसको नरकृत्य करना जरूरी है। क्यों कि अपने कर्तव्यको करनेसे मनुष्य नारायण बनता है और नहीं करनेसे नारकी बनता है। जिस प्रकारसे भगवानने सर्व संगका परित्याग कर षड्रिपु परनिंदा, क्रोध, कुवासना, अभिमान और विषयकषाय आदिका त्यागकर अनेक प्रकारके कायक्लेशादिक तपके द्वारा अपनी आत्मा को सर्व प्रकारकी पापोंसे जुदा किया है और पवित्र बनाया है ऐसे भगवानकी भक्ति करने से मुक्ति मिलती है। भक्तिका मतलब सिर्फ स्तुती, स्तोत्र या पूजादिक करनेसे नहीं है परन्तु उसके साथ २ उनके आचरण करनेसे ही कार्यकी सिद्धि होगी अगर हम भगवानके भावोंमें निमग्न रहेंगे तो उनके गुणोंके प्रभावसे हमारी प्रवृत्ती भी तदनुरूप हो सकेगी। ईश्वरकी भक्ति करके उनसे धन, सम्पत्ती, स्त्रीपुत्रादिक व अनेकानेक संसारीक पदार्थोंकी याचना करना माने अपनी मूर्खताका परिचय देना है। क्योंकि ईश्वर स्वयं इन बातोंसे जुदा है और वह इन पदार्थोंको दे भी नहीं सकता है। क्यों कि जिसके पास जो पदार्थ होता है उसीका देना संभव भी हो सकता है।

करनेसे ही मिलेगा। यह स्वाभाविक बात है कि अगर किसी जवेरीके पास जाकर कोई कपड़ा मांगे या किसी प्याज लसन बेचने बेचनेवालेके पास जाकर मोती मांगें तो खरीददारकी अविवेकता और अज्ञानता ही दीखेगी। इसी तरहसे मूर्ति, जिसमें भगवान तो है ही नहीं, केवल चित्र मात्र है, अगर मंत्र विधिसे उसमें भगवानका आरोपण किया गया है तो भी उसके सामने खड़े होकर विषयकषायको प्रगट करनेवाले और भवभ्रमण करानेवाले पदार्थोंका मांगना अति अनुचित ही नहीं परन्तु हास्यास्पद भी है। क्यों कि वह मूर्ति स्वयं हलन चलनादि क्रियासे रहित जड पदार्थ है।

प्रश्न —यदि मूर्तिमें भगवान नहीं और वह कुछ देती लेती भी नहीं है तो उसका यजन, पूजन, स्तुति, स्तोत्र करना सब व्यर्थ होगा ?

उत्तर—भो मित्र ! ऐसी शंका करना निर्मूल है जरा गहनतासे विचार करनेकी आवश्यकता है।

मूर्तिकी पूजा करना तो भोजन करनेसे भी ज्यादा जरूरी है। जबतक हम पूजनादि क्रिया करते रहेंगे तबतक हमारा मन उनके गुणोंमें रत रहकर उनके अलौकिक और जगत् कल्याणक कर्तव्यमें रमता रहेगा और दोष छोडनेकी ओर गुणग्रहण करनेको आत्मा उत्सुक रहेगा। जितने समय उक्त कार्यमें संलग्न रहेंगे उतने समयतक पापोपा

मैल करनेवाले उद्योग आरंभ और सब दुर्वासना छल कपटादिकके द्वारा संसारका गला घोटने आदिसे दूर रहेंगे इससे महान पुण्यबंध होकर यह जीव अपने आप धन, लक्ष्मी कीर्ति आदिको प्राप्त कर इस भूमंडलके ऊपर राज्य संपदा भी उपलब्ध कर सकेगा। इससे यह सिद्ध होजाता है कि मूर्तिकी निष्काम पूजा करना महान् कल्याणकारी है।

इसी प्रकार दीप धूप आदिसे त्रिलोकीनाथकी आरती भी की जासकती है ये सब कार्य हो चुकनेपर फिर शुद्ध जलके द्वारा प्रतिमाके ऊपर महाशांतिधारा छोड करके उस प्रतिमाको फिर दूसरे दिनपर्यंत निरंजन निराकार अंतिम जो केवलज्ञान अवस्थाकी आकृति है उसीमें रहने देना चाहिये यही समीचीन और आर्षविधि है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य इसके वास्तविक रहस्यको समझकर तद्वत् आचरण करने लगेंगे तो संसारमें स्थायी शांति स्थापित हो सकेगी और अलग २ मंदिरोंकी आवश्यकता न रहेगी और सब कलह और अशांति सदाके लिए संसारसे विदा हो जांय। राज्य अवस्थामें भी भगवान् दिव्य सिंहासनासीन तलवार बंदूक आदि शस्त्रोंको ग्रहण किए हुए बत्तीस हजार मुकटबद्ध राजाओंके द्वारा नमस्कृत हैं, चरणकमल जिनके सो भी पूजनीय और वंदनीय हैं। साधुके लिए सिर्फ अंतिम अवस्था उपादेय है। परंतु गृहस्थके लिए

सभी अवस्थाएं द्रव्य और भावरूपसे नमस्कार करने योग्य हैं। जो ऐसा श्रद्धान नहीं रखता है वह सम्यग्दृष्टि नहीं है अपितु मिथ्यादृष्टि ही है।

फल कर्माधीन है—

सदा स्वकृतकर्मानु-सारमेव फलं भुवि ।
लभन्ते तत्त्वतो जीवाः न चैते देवजं वृथा ॥४०॥

संस्कृतार्थः—भुवि=भुवनमध्ये, एते जीवाः=नरादयः तत्त्वतः=निश्चयतः स्वकर्मानुसारमेव फलं लभन्ते, केचिद्-अज्ञानिनः, तत्फलं देवजं=देवदत्तं मन्यन्ते, तद्वृथैव=निरर्थकमेव ।

Beings always get the fruit, in reality, according to the deeds done by them only, but they vainly regard it as if obtained from god [40]

अर्थ—इस संसारमें सभी जीव चाहे वो मनुष्य हों देव हों या किसी भी पर्यायमें हों अपने किये हुए अच्छे बुरे पूर्वोपार्जित कर्मके अनुसार ही फल पाते हैं। उस फल को जो कोई अज्ञानसे देवता या ईश्वरके द्वारा दिया हुआ मानते हैं, यह व्यर्थ का भ्रम है।

भावार्थ—मनुष्य अपने सदाचारके द्वारा ही सुख, सम्पत्ति, पुत्रादिक, कीर्ति वैभवादिकको प्राप्त कर सकता है। मनुष्य बीस पचास वर्षपर्यंत ब्रह्मचर्यसे रहे और फिर गृहस्थाश्रममें प्रवेश कर स्त्रीके ऋतुमती होनेपर ही समागम करें तो पुत्रादिक की उत्पत्ति नियमसे होगी।

क्यों कि ऋतुकाल में ही योग्य संतान उत्पन्न होनेकी शक्ति व्यक्त हो जाती है। ऋतुकालमें ही रज वीर्य अपना कार्य करनेमें समर्थ हो जाते हैं जैसे पृथ्वी जेष्ठमासमें खूब तपकर गरम हो जाती है और उसको खादादिक डालकर तैयार की जाती है और वर्षाकालके प्रारंभ होने पर जलका संयोग होते ही भूमि फूल जाती है और बीज अंदर पडते ही तत्काल चारों तरफसे बढने लग जाता है और फल देनेकी तैयारी करता है। वैसे ही पशु, पक्षी भी ऋतु कालमें संयोग करनेसे बराबर संतती उत्पन्न करते हैं। ऋतुकी मर्यादाका उल्लंघन करके मैथुनादिक कार्यमें प्रवृत्ति नहीं करते हैं। इसलिए यह साहजिक प्रमाण सिद्ध बात है कि मनुष्योंके संतानविहीन होनेका कारण उनके अनियमित आहार विहार आदि ही है। जो पृथ्वी मनुष्यों और पशुओंके गमनादिकसे मर्दित हो जाती है उस पृथ्वी पर जल और बीजादिक का संयोग होते हुए भी अंकुर उत्पन्न नहीं हो सकता है, इसी तरह बहु मैथुनादिक करनेसे योनि रज वीर्य बिगड जाते हैं और संतान उत्पन्न करनेके अयोग्य हो जाते हैं। अर्थात् ऋतु समयके बिना स्त्रीसेवन करनेसे और रज वीर्यका असमयमें नाश होनेसे पुत्रादिकका लाभ न होगा और अनेक रोग उत्पन्न होकर शरीरकी व्यवस्था बिगडकर हानि होना ही निश्चित है। ऐसी अव

स्थामें कदाचित् सन्तान उत्पन्न भी हो जाय तो कान्ति हीन, बलहीन और अल्पआयुकी धारक ही होगी। जैसे छिन्न भिन्न मार्गमें अंकुर निर्बल होजाता है। ऋतुकाल होनेपर स्त्री की योनि फूली हुई रहती है उससमय रजो वीर्यका सम्बन्ध होनेसे अच्छी रूपवान् बलवान्, तेजस्वी सन्तान उत्पन्न होती है। भावार्थ–पशु पक्षी के अन्दर भी कोई ऐसा नहीं है जिसके सन्तान उत्पन्न नहीं होती है। इसलिये समयानुसार कार्य करनेसे इष्ट फलकी प्राप्ति अवश्य होती है लक्ष्मी जो है वह भी सच्चा धर्म या उद्यम करनेसे मिलती है। क्यों कि संसारमें प्रत्येक कार्यकी सिद्धि प्रयत्न पूर्वक होती देखी जाती है। इसलिये मनुष्य ही स्वयम् सुख दुःखका कर्ता है। कोई ईश्वर या देवी देवता कर्ता हर्ता नहीं है। यह सप्रमाण सिद्ध हुआ कि समय समय पर प्रयत्न करनेसे सब मनवांछित सिद्धि होती है। संसार आजतक ईश्वरके भरोसे रहते हुए अकर्मण्य और आलसी बना रहकर स्वयम् दुःखोंके समूह अपने ऊपर लाद रहा है। इसलिये इस अनुचित और हानिकारक श्रद्धाका त्याग करें एवं अपने पैरोंपर खड़े रहकर कार्य क्षेत्रमें उतरना चाहिये, यही बुद्धिमत्ता और कल्याणका मार्ग है। ईश्वरने स्वयम् उद्योगशील बननेकेलिये आदेश दिया है फिर भी अगर हम उसके भरोसे रह कर अपने कर्तव्यको नहीं करेंगे तो उसका दोष हमारे सिरपर ही रहेगा। इसका प्रमाण पहिले दिया जा चुका है और अब

तक हम भगवदाज्ञाका पालन न करेंगे तो सच्चे भक्त भी न बन सकेंगे।

कीदृशी मूर्तिर्न पूजनीया

न पूज्या विकृतिर्मूर्तिः केवलं रागवर्द्धिनी।
आत्मा दर्पणवच्चास्ति, सगच्च लभते यथा ॥५०॥
तथा भवति तत्त्वेन, युक्तिशास्त्रप्रमाणतः।
सतैरयुक्तं नृणां सिद्ध्यै, नैव कस्यापि पक्षतः ॥५१॥

संस्कृतार्थः—या हि मूर्तिः विकृतिः=विकाररूपा, केवलं रागवर्द्धिनी=रागद्वेषवर्द्धनशीला सा न पूज्या, यतो हि आत्मा दर्पणवदस्ति, यादृशी सङ्गतिर्भवति, तत्त्वेन=वस्तुतस्तथैव परिणमति, तत्स्वरूपः भवति इति युक्त्यागमप्रमाणतश्च प्रतीयते, अतः विकृतमूर्तिपूजा नैव विधेया सर्वमेतद् सता=ऋषिगणेन केवलं नृणां सुखसिद्ध्यर्थमेवोक्तं=प्रतिपादितं, न च कस्यापि पक्षपातवशादुक्तं।

WHAT SORT OF IDOL IS NOT WORSHIPPED !

The idol which is deformed one which causes anger in one s mind, should not be used for the soul is like a mirror which resembles a thing placed before it This is proved reasonably by the good for the welfare of men and not being in a party to any one [50-51]

अर्थ—जो मूर्ति विकाररूप हो, जिसके देखने मात्रसे रागरूप परिणाम या कषाय के भाव हो उसकी

पूजा नहीं करना चाहिये। क्यों कि आत्मा तो दर्पण के समान है, इसके सामने जैसी वस्तु होती है, वैसी ही इस की भी परणति होजाती है, यह बात युक्ति और प्रमाणसे सिद्ध है। जीवोंको अपने स्वरूपकी एवं कल्याणकी सिद्धि हो इसीलिये सत्पुरुषोंने इसका वर्णन किया है, किसीके पक्षपातसे नहीं।

भावार्थ —इसका अभिप्राय यह है कि सराग अवस्था सर्वथा वर्जनीय नहीं है किन्तु सरागताके पास वीतरागता मानना असाध्य है। इसलिये तत् तद् अवस्थाको मान-कर तदनुकूल आचरण करना ही वास्तविक धर्म है और क्रमानुसार सब अवस्थाओंका पाप होना अत्यावश्यक है। जो इस प्रकार श्रद्धान नहीं करता है वह न इधरका रहता है और न उधरका है। इसलिये उभयलोक सुधर जाय ऐसी प्रवृत्तीका अवलम्बन करना ही श्रेष्ठ है अर्थात् उस २ अवस्थाका मूर्ति सामने रखना आवश्यक है। ब्रह्मचारी, गृहस्थी, वानप्रस्थ और जन्मावस्था, राज्या वस्था आदि सराग अवस्थाएं हैं, परन्तु तो भी गृहस्थोंके-लिये आदरणीय और पूजनीय हैं और अन्तिम निर्विकार या सन्यास अवस्था जो है या दीक्षा कल्याणकके आगे जितने भी कल्याणक हैं वे ही मनुष्यमात्रका ध्येय होना चाहिये।

पूर्वोक्तमेव समर्थयति

यावत्तोऽतो हि पृच्छामि भार्यापुत्रधनादिका।
दीयन्ते यदि दवै कौ, किमर्थं क्रियते वृथा ॥५२॥
विवाहव्यवसायादि प्रयोगश्चौषधादिन ।

संस्कृतार्थः—पूर्वोक्त निष्कामोपासनास्वरूपं प्रकारान्तरेण समर्थयमाह यदि देवेभ्य याचमानः, एव भार्यापुत्रधनादिका प्राप्यन्ते तदा भार्यार्थे विवाहस्य, धनार्थं व्यवसायस्य, आरोग्यार्थं=औषध प्रयोगस्य च का आवश्यकता भवेत् ।

I question to the persons who ask in this way If a wife, a son, wealth, etc. are granted by gods in the world what is the purpose of a marriage, business, medicine and other things for which they strive ? [52]

अर्थ —मूर्ति या देव कुछ देते नहीं इसी बातको स्पष्टतासे समझाते हैं कि-हे भाई ! मूर्ति से मांगनेवाले यदि देवता लोगोंको भार्या, पुत्र,दे सकें तो फिर विवाहकी क्या जरूरत ? यदि वे धन दे सकें तो फिर व्यापार व उद्यमकी क्या आवश्यकता ? लोकमें देखा जाता है भार्या, धनादि, अपने २ उपायरूप उद्यमसे ही प्राप्त होते हैं देवोंसे नहीं । इसलिये इन वस्तुओंकी, या किसी प्रकार की भी याचना मूर्ति या देवसे करना ठीक नहीं है ।

भावार्थ—इसका वर्णन पूर्व प्रकरणमें विस्तारसे किया गया है । इसलिए संक्षेपसे इतना ही समझना चाहिये कि देवी देवतादि कोई भी सुख दु ख देनेमें समर्थ नहिं हैं । सुख दुःख तो स्वय किया हुआ पुण्यपापसे मिलता है । इसलिए पाप छोड़करके पुण्य करना चाहिये जिससे सब सुख संपत्ति मिलेगी ।

इस प्रकार मूर्तिपूजाका हिताहित वर्णन किया गया।

मूर्तिनिषेधका कारण अथवा मूर्ति न माननेवालोंको उपदेश.

चिटम्बनाधिक दृष्ट्वा, कैश्चिन्मूर्तिर्निषिध्यते ॥५३॥
सर्वथा प्रतिमाऽपाया ज्ञानहीनेन किं फलम्।
तदारेकानिवृत्त्यर्थं युक्तियुक्तमिहोच्यते॥ ५४ ॥

संस्कृतार्थः—मूर्तिमोहवशगताः कथन नानावेषविरचनरूपं मूर्तिविडम्बनं कुर्वन्ति, तद्दृष्ट्वा कैश्चित् सर्वथा मूर्तिर्निषिध्यते अत अज्ञानक्रियायाः किं फलं भवति इति येरुच्यते तेषामारेका निवृत्त्यर्थं युक्तियुक्तमुच्यते।

ADVICE TO THOSE WHO DO NOT ACCEPT IDOL-WORSHIP

Some men condemn the idol when they see mockery of the idol by some people They say to all others ' What good will come of the thought less performances ! The idol is not to be accepted at all " But here I have to say something (53 54)

अर्थ'—अनेक व्यक्ति मूर्ति या सांसारिक वस्तुओंसे मोहित हुए, मूर्तिके नाना प्रकारके वेष बनाकर उसकी विडम्बना करते हैं, रागोत्पादक वस्त्रालंकार आदिसे सजाकर पूजा करते हैं इस बातको देखकर कई व्यक्ति सर्वथा मूर्तिपूजा का निषेध करते हैं कि मूर्तिके साथ इन अज्ञान क्रियाओंसे क्या फल हो सकता है। इसलिए

सर्वथा ही मूर्तिको नहीं मानना चाहिए, ऐसा कहनेवालों के प्रति भी युक्तियुक्त बातको कहता हूं।

भावार्थ—पूर्वोक्त प्रकार लोकोपकारी पुरुषोंकी अवस्थाओं और पाचों कल्याणकोंकी मूर्तिको छोडकर जो अनेक प्रकारकी विद्रूप मूर्तीकी पूजा वदना करके उसके सामने खडे होकर अनेक प्रकारकी याचना करते हैं वे अपने पैरपर आपही कुल्हाडी तो मारते ही हैं, लेकिन साथ ही साथ आत्मशांति और विश्वशांतिका घात करते हैं। मूर्ति किसकी और कैसी होनी चाहिए और उसकी पूजन वदन क्यों आवश्यक है। इस प्रकार निर्णय किये बिना कल्पित मूर्तीकी पूजा वदनामें प्रवृत्ति करना व्यर्थका परिश्रम होगा। मूर्तिपूजाका उद्देश तो सिर्फ इतना ही है कि उस मूर्तीमन्तके गुणोंका अपने हृदयमें सचार करना है। इसलिए उन अवतारी पुरुषोंकी मूर्ति ही पूज्य है कि जिन्होंने लोकोत्तर कार्योंके द्वारा आत्म शांति और विश्वशांतिका अपनाया हो। इसलिए उन अवतारी पुरुषोंके द्वारा अवलम्बन किया हुआ पथ हमारे लिए आदरणीय और ग्राह्य है ताकि हम भी आत्मशांति के साथ २ विश्वशांतिमें हाथ बटा सकें। इसके विना सब व्यर्थ और विडम्बना है।

मूर्तिपूजा का उचित उपाय व स्वरूप

नाति विडम्बनं कार्यं, निषेध्या प्रतिमापि न।
किंतु निर्विकृतिर्मूर्तिः, विश्रान्त्यर्थं प्रमोहिनाम् ॥५५॥

स्थाप्या वन्द्या स्वनिष्ठानां मूर्त्यावश्यकतास्ति न ॥
इति ज्ञात्वा जनैः पाल्या, रीतिरुक्ता प्रशान्तये ॥५६॥

संस्कृतार्थ —प्रतिमायाः, चित्रविचित्ररूप विडम्बन न कार्यं न च, सर्वथा मूर्तिनिषेध कर्तव्य, किन्तु मोहपतित व्यक्तानाम् विश्रान्त्यर्थ=शान्त्यर्थं, निर्विकृति=निर्विकारा, सात्विकी मूर्ति स्थाप्या, प्रतिष्ठातव्या, सैव वन्दनीया, स्वात्मनिष्ठानाम् आत्मन्येव निमग्नानाम् कृते तु मूर्तिस्थापनायाः आवश्यकता एव नास्ति । इति ज्ञात्वा जनैः=लोकैः शान्त्यर्थं उक्ता रीति मध्यपद्धति निर्विकारमूर्तिपूजारूपा, पाल्या—स्वीकार्या ।

There should be no mocking of the idol worship by putting on it a strange dress It should not at all be condemned The idol should be established as one which represents the unchangeable supreme diety with the intention of securing peace by even a perplexing person It should then be adored A person who is engrossed in his soul and who requires no such means may not worship the idol Knowing this a fortunate being should accept the right way by which it can obtain peace. (55-56)

अर्थ—पूज्य मूर्तिकी चित्र, विचित्र वेष भूषा बनाकर विडम्बना नहीं करना चाहिये, किंतु मोही जीवोंको भी शांति प्राप्त हो इस प्रकारके निर्विकार स्वरूपवाली मूर्तिकी स्थापना करनी चाहिए और उसकी वन्दना करनी चाहिए, और जो व्यक्ति आत्मस्वरूपमें तल्लीन हो चुके

हैं और जिन्हें ऐसे किसी सहारेकी जरूरत नहीं है उनको मूर्तिपूजाकी भी आवश्यकता नहीं है। ऐसा जानकर भव्योंको वही उचित रीति स्वीकार करनी चाहिए जिससे कि शांतिलाभ हो।

सारांशः—जो लोग मूर्ति नहीं मानते हैं या उसको खाली निष्प्रयोजन कार्य समझते हैं उनकी मोटी बुद्धिपर हंसी आये बिना न रहती है। उनसे मैं अनुरोध करूंगा कि वे इस पर ठन्डे दिलसे विचार करें।

संसारमें आज तक मूर्तीके बिना न कोई काम हुआ है और न होगा। जितने भी पुरुष बिगड़ गये हैं या सुधर गये हैं तो सिर्फ एक मूर्तीके द्वारा ही। मूर्तीके अवलम्बनके बिना प्राणरक्षण करना कठिन ही नहीं परन्तु असंभव हो जायगा। इसका कुछ दृष्टान्तोंके द्वारा स्पष्ट करते हैं। जैसे किसी सुंदर वेश्याका चित्र अवलोकन करने मात्रसे मनमें विकार उत्पन्न हो जाता है, किसी भयंकर देवी आदिका चित्र देखनेसे भय पैदा हो जाता है। किसी योद्धाका चित्र देखनेसे वीररस उत्पन्न हो जाता है और भी रमणीक पदार्थोंके देखनेसे तादृश परिणाम हो जाते हैं। [redacted] प्रकारसे किसी महान् भाग्यशाली, परम वीतराग, परम हंस, आत्मनिष्ठ, सर्व संग परित्यागी, निस्पृह, शान्तमुद्राको धारण करनेवाले महात्माके चित्रका देखनेसे तद्वत् आचरण करनेके भाव हो जाते

है यह सब जड पदार्थ होनेपर भी मनुष्यका हित अहित करते हैं, मूर्ति जड है, जडकी पूजा, वंदना करनेसे क्या लाभ है? कोइ २ तो यहांतक कह देते हैं कि पत्थरकी मूर्तीकी पूजा करनेसे मनुष्य भी पत्थरके समान हो जाता है और मूर्तीको भी तिरस्कारकी दृष्टिसे देखते हैं। ऐसे सारहीन विचारवालोंकी बुद्धिपर तरस आती है। संसार में जितने भी प्राणी हैं जडके संयोगसे ही जीवित हैं। उस के वियोग होनेपर तुरन्त मरणको प्राप्त हो जाते हैं। दूध, चाय व अन्य भोजनादिक सामग्री जड हैं। चायके अभा वमें बहुतसे मनुष्योंका सिर चढ जाता है, अगर एक दिन भोजन न मिले तो दूसरे दिन बिस्तर पकडना पड जाता है। मादक पदार्थोंके सेवनसे ज्ञान संकुचित हो जाता है। जैसे शराब आदि। यहांतक कि इनके सेवनसे मनुष्यको पागल हो जाना पडता है। विषके भक्षण करनेसे मृत्युतक हो जाता है सोना मक्खी परदका तेल खानेसे विरेचन हो जाता है और अधिक मात्रामें खा लिया जाय तो इन सबके जड होनेपर भी बिस्तर भी पकड लेना पडता है घृत, दुग्ध, बादाम, पिस्ता आदिके भक्षण करनेसे शरीरमें बलवृद्धि होती है और आरा ग्यता बढती है, हीरा, मोती, सोना, चांदी जरीके और रेशमी वस्त्र जड होनेपर भी मनमोहक हैं और ताम्बा, पीतल लोहा जीर्ण वस्त्रादिक मूर्तिक और जड होनेपर भी मन मोहक नहीं हैं। ये सब प्रत्यक्ष प्रमाण हैं।

कहांतक कहा जाय ? जडपदार्थोंकी शक्ति अचिन्त्य है। विज्ञान द्वारा उत्पन्न होनेवाले बोम्ब, गोळा, जहरीली गेस ये सब जड पदार्थ हैं। इनकी शक्तिसे आज संसारमें कितना विध्वंस हो रहा है। इनके सदुपयोगसे मनुष्य सुखी होता है। इनके दुरुपयोगसे मनुष्य दु:खी होता है। इनके अलावा बीडी, सिगारेट, तबाकू, गांजा, भंग चरस आदि मादक पदार्थोंके सेवनसे देशविदेशमें मनुष्य निकम्मा और आळसी, दरिद्री बन जाता है,जब कि चावल,उदद, चना, मूंग आदिके सेवन करनेसे मनुष्य स्वस्थ रहकर आत्महित और परहितमें रत हो जाता है दर्पणको देखने से मुख सुंदर बनानेका विचार हो उठता है। उपरोक्त समस्त पदार्थ जड और मूर्तिक होते हुए भी इनके साथ संयोग सम्बन्ध होजानेसे मनुष्यकी विचारधारामें अनेकानेक परिवर्तन हो जाते हैं। इसी प्रकारसे अवतारी पुरुषोंकी किसी भी अवस्थाकी मूर्ति देखें हमारी विचार श्रृंखला भी तदनुकूल ही प्रवृत्ति करेगा। स्कूलके अन्दर भी बच्चोंको पदार्थोंका ज्ञान चित्रोंद्वारा ही कराया जाता है। शास्त्रोंमें जो अक्षर होते हैं वे भी एक प्रकारके चित्र ही हैं। उनके अध्ययन करनेसे हमारे ज्ञानमें वृद्धि होती है व वक्ताके भावको भी उन अक्षरों द्वारा हम जानलेते हैं और कहीं २ जो बड़े २ नेता हो गये हैं उनका स्टेच्यु [Statue] याने मूर्ति बनाकर गांव या शहरके मध्य भागमें या और किसी जगह रखी जाती है

ताकि आमजनता उसको देखकर उसके लोकहितके कार्योंकी तरफ दृष्टिपात करे। जैसे देहली आदि में महारानी विक्टोरियाका या स्वर्गीय महाराज बीकानेरका स्टेच्यु (Statue) मौजूद है यदि अपने घरमें अपने माता पिताका चित्र होवे और कोई उसका अपमान करे तो हृदयमें क्रोधका वेग उत्पन्न हो जाता है। क्यों कि इससे दिलमें ठेस पहुंचती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि संसारमें सब मनुष्योंका किसी न किसी रूपमें मूर्तिको माननेसे ही कल्याण होता है और न माननेसे अकल्याण। क्यों कि इसके बिना काम चल नहीं सकता है। परन्तु मूर्ती उन ही अवतारी पुरुषोंकी मानने और पूजन योग्य हैं कि जिन्होंने अपनी शुभ कृतिके द्वारा लोकोत्तर कार्य करके संसारमें स्वयम् आदर्श रूप बनकर सुख और शांतिका साम्राज्य स्थापित किया हो। ऐसे पूज्य पुरुष ही हमारे आराध्य देव हो सकते हैं। अन्य विद्रूप मूर्ति कदापि मानने पूजने योग्य नहीं। क्यों कि वह उद्देश्य शून्य है। इसलिए तीर्थंकरादिक व अवतारी पुरुषोंकी जिन्होंने इस भूमि और अपनी आत्माको पवित्र बनाया है उनकी सब अवस्थाओंकी मूर्तियाँ जीवन्मुक्त अवस्था पर्यंत मान नीय और पूजनीय हैं। उनकी पूजादिक करनेसे विषय कषायसे हटकर गुणचिंतवनमें रत होनेसे महान् पुण्यका उपार्जन होता है। इसलिए निर्विवाद सिद्ध होता है कि मूर्तिपूजा मानवोंका प्रधान कर्तव्य है और उनका

पूजन अपने दीप, धूप, पुष्प फलादिक शुद्ध द्रव्यों से ही होना चाहिए।

यहांपर इतना और भी विशेष समझ लेना चाहिये कि वेदमें और गीतामें मूर्तिपूजाका विधान दो प्रकारसे किया गया है। एक सगुण मूर्तिपूजन और दूसरा निर्गुण मूर्तिपूजन सगुण मूर्तिपूजन अवतारी पुरुषोंका हुआ करता है। क्यों कि अवतारी पुरुष तामस, राजस व सात्विक गुणोंसे युक्त रहते हैं। इसलिए उनकी मूर्ति भी तत्तद्गुणोंसे युक्त होनेके कारण अस्त्र शस्त्रादिकसे युक्त भी देखी जाती है। एवं आश्रम भेदके अनुसार भिन्न भिन्न आश्रमोंके परिज्ञान कराने लिए उनकी मूर्ति बनाई जाती है। यह सामान्य श्रेणीके लोगोंको मूर्तिमान्के उपादेय गुणोंसे परिचित करानेके लिए है। परंतु निर्गुण मूर्तिपूजनमें साक्षात् निरंजन निराकार परमात्माकी प्राप्तिका ही ध्येय है। जैसे सालिग्राम, शिवलिंग आदिके आकार तामस राज सात्विक गुणोंकी अवस्थासे विरहित है। अत उसमें अंतिम ध्येयका ही साध्य करना चाहिए। इसी प्रकार यह भी खुलासा किया गया है कि अवतारी पुरुष ही तामस राजसादि गुणोंसे युक्त होनेके कारण सृष्टी आदि की रचना करते हैं। परन्तु निरंजन निर्विकार परमात्मा सृष्टी आदि कार्यमें नहीं पडता है। क्यों कि वह निरंजन, मुक्त व कृतकृत्य है। अवतारी पुरुष तामसादिक गुणोंसे विशिष्ट होनेके कारण मुक्त व कृतकृत्य नहीं है। इसलिए

उनमें ही कर्ता और हर्तापनेका सभव हो सकता है। निरजन निर्विकार परमात्मा जो निर्गुण (तामस राज सात्विक गुणोंसे रहित) के नामसे कहा गया है उसमें यह सब सांसारिक कार्य सभव नहीं हो सकता है। इस रह स्यको समझकर मूर्तिपूजाके भेदको समझ लेना चाहिये।

इससे यह स्पष्ट सिद्ध होता है कि वेद व गीतादिक ग्रथोंने भी मूर्तिपूजाका समर्थन ही किया है।

सूरेः श्री कुथुसिंधोश्च स्वात्मनिष्ठस्य धीमत ॥
पक्षपातविमुक्तस्य, भावोऽस्ति विश्वतारकः ॥५७॥

सस्कृतार्थ —स्वात्मनिष्ठस्य=निस्पृहस्य, पक्षपातविमुक्तस्य= रागद्वेषरहितस्य श्री कुथुसागराचार्यस्य, अयमेव विश्वतारक = ससारकल्याणकारक भाव = अभिप्रायोऽस्ति।

This is the world liberating opinion of "Shree Kunthusagar" the wise preceptor, who is engrossed in his soul and who is void of partiality All persons should try to undetstand the truth of idol worship [57]

अर्थ —आत्मनिष्ठ, निस्पृह, पक्षपातरहित, परम बुद्धि मान् श्री कुथुसागराचार्यका यही अभिप्राय है कि विश्वका उद्धार हो, सब सत्यके ही स्वरूपको समझनेकी चेष्टा करें।

सारांश —इस प्रकार आचार्यवर श्री कुथुसागरजी स्वामीका यही उद्देश्य है कि विश्वके सभी जीव भेदभाव की बुद्धि छोडकरके आपसमें बहुत ही प्रेमके साथ प्राणी रहें और आत्मशांति और विश्वशांतिको अपना अन्तिम ध्येय निर्धारित करें और प्रतिमापूजाके द्वारा अपना आत्मकल्याण करें।

विशेष ध्यान देने योग्य विषय

साराश — चाहे कृत्रिम प्रतिमा हो चाहे अकृत्रिम प्रतिमा हो उन सब प्रतिमाओंका पूजन प्रतिदिन संक्षेपसे पंचकल्याणक विधिसे ही करना चाहिए जिससे भगवान् की सब अवस्थाओंका बोध हो जाय। इसके बिना पूजन प्रक्षालन बनता ही नहीं है। क्यों कि प्रक्षालन जन्म और राज्य अभिषेक समयमें ही हुए हैं और यह युक्ति युक्त आर्षमार्ग है। केवलज्ञान और निर्वाण कल्याणकमें अभिषेक नहीं है। इसलिए जहां अभिषेक है वहां बाल्याव स्था ही है। वह अभिषेक चाहे जल या दुग्धादिसे हो अथवा चरणों वा शरीर पर फूल केशर आदि चढाना हो तो वह सब बाल्य अवस्था ही समझना चाहिए। पूजनके पहिले अभिषेक करना तो जरूरी है और वह अभिषेक आदि करनेकी अवस्था जो है सो बाल्य अवस्था ही है। और अभिषेक व शांतिधाराके बाद भगवानको सर्वांग स्वच्छ यथाजात अर्थात् निर्लेप करके वेदीपर विराज करके जो पूजन की जाती है वह केवलज्ञान व निर्वाण अवस्थाकी पूजन समझना चाहिए। यही आर्षप्रमाण और युक्तियुक्त है। इसके सिवाय जो लोग प्रतिमाका पूजन अलग व तीर्थंकरका पूजन अलग २ मानते हैं वह युक्तियुक्त और आर्षमार्ग नहीं है। क्यों कि इस भूतलपर तीर्थंकर भगवान् ही जगत् और आत्मकल्याण करनेके लिए प्रमाणभूत हैं। इसलिए तीर्थंकर भगवानकी जितनी अवस्थायें हैं गौण व मुख्य रूपसे उन २ अवस्थाओंका बोध करानेके लिए चाहे कृत्रिमप्रतिमा हो चाहे अकृत्रिम

हो उनका प्रक्षाल, पूजन, भक्ति करना चाहिए । इस विधीके विना जो पूजन करेगा वह सत्यसे कासों दूर रहेगा तथा आत्मकल्याण और विश्वकल्याणसे वंचित रहेगा। क्योंकि तीर्थंकर के सिवाय और कोई प्रमाण नहीं है । मूर्ति जो बनाई जाती है वह सब तीर्थंकरकी ही प्रतिकृति है इसलिए इसी पंचकल्याणक विधिसे ही पूजन करना चाहिए। यदि कोई शंका करे कि जिस प्रकार मुनियोंका पाद प्रक्षालन करनेमें वस्त्र लगनेसे मुनि निर्दोष है,इसी प्रकार वीतराग भगवान्का प्रक्षालन करने या वस्त्रसे पोंछनेमें कोई दोष नहीं है ।ऐसा जो कहते हैं वह गलत है । क्यों कि मुनि महाराजोंके उसका त्याग नहीं है तथा भगवान्की भी बाह्य अवस्थामें यह त्याज्य नहीं है। प्रक्षालन या वस्त्रादिसे पोंछना इन सबका विषय ही है। किंतु केवलज्ञान व निर्वाण अवस्थामें तो इन बातोंका निषेध ही है अथवा असम्भव है। इसलिए मुनियोंके पाद या शरीर आदिके पोंछनेपर भी जैसे मुनि पवित्र हैं, इसीप्रकार वीतराग अवस्थाके भगवान्का प्रक्षाल व पूजन करनेसे उनकी वीतरागता नष्ट नहीं होती यह कहना मिथ्या है ।क्यों कि भगवानके तो सर्वथा त्याग हो गया है और मुनियोंके त्याग नहीं हुआ है । इसलिए भगवान्को निर्लेप ही रखना चाहिये । यही आर्षविधि और युक्तियुक्त है ।

इति श्री आचार्य कुन्थुसागरविरचित सत्यार्थदर्शन ग्रन्थमें

तृतीय अध्याय समाप्त हुआ ।

END OF THE THIRD CANTO.

अथ चतुर्थोऽध्यायः ।



नत्वा निरंजन भक्त्या, विष्णु बुद्ध जिन सदा ।
सज्जैनाजैनशब्दार्थं, कथयामि प्रमाणतः ॥ ५८ ॥

संस्कृतार्थ.—निरंजन=निर्विकार, विशति व्याप्नोति अन्तरंग बहिरंगलक्ष्मी इति विष्णुस्त, बुद्ध=प्रबुद्ध, जिन=क्रोधादिकषाया स्पर्शेन्द्रियविषयांश्च जयतीत्येव शील, त, सर्वदा भक्त्या नत्वा नमस्कृत्य, जैनश्चाजैनश्च जैनाजैनौ तयो शब्दार्थस्त, सत्स्वरूपेण तदर्थं प्रमाणत कथयामि=निरूपयामि ।

FORTH CANTO

Having bowed always to the blameless God Jina, who has conquered all the enemies in the form of anger, etc and who is the lord of "richess and success, I distinguish the word Jain and ' Non Jain ' evidently [58]

अर्थः—निर्विकार, अतरंग बहिरंग लक्ष्मीके स्वामी विष्णु स्वरूप परमज्ञानी, क्रोधादि कषाय तथा विषयों को जीतनेवाले, जिन भगवान् को नमस्कार करके प्रमाण पूर्वक जैन व अजैन शब्दकी समीचीन व्याख्या करता हूं।

भावार्थः—प्रचलित रूढी व प्रमाणसे जैन अजैन शब्द को व्यवहारमें आता है वह वास्तविक नहीं है । आगे इस का स्पष्टीकरण करते हैं :—

व्युत्पत्तिर्जैनशब्दस्य, भवत्येव जिधातुतः ॥
कोऽपि व्यक्तिविशेषोऽस्य, नेति सिद्धं प्रमाणतः ॥५९॥

तथाप्यज्ञानतः केचिद् जैनास्तेति ब्रुवति च ॥
अजैना स्मस्ततो तैश्च सम्बन्धो नास्ति कौ समम्॥६०॥

संस्कृतार्थ —जैन शब्दस्य व्युत्पत्ति =सिद्धि, जि धातुतः भवति। "जैन" इति शब्दः कस्मिंश्चिद् व्यक्तिविशेषे, सम्प्रदाय वा रूढो न वर्तते इति प्रमाणतः सिद्धोऽस्ति। तथापि अज्ञानतः ब्रुवन्ति=प्रकथयति अमी [ते] जैना वयम् च अजैनाः किं=निश्चयेन कौ=इह, ते =जैनैः अजैनैश्च सम कापि सबधा नास्ति इति।

The word 'Jina is derived from the root Ji' meaning to conquer The word does not apply to a particular being or cast or community This is proved with evidence. Yet some ignorant persons say ' These are Jains and we are non Jains There is no relation of us with them in this world ! [59 60]

अर्थः—'जैन' यह शब्द 'जि' इस धातुसे बना है, किसी व्यक्ति, जाति, या सम्प्रदाय विशेषके लिए ही यह शब्द रूढ नहीं है, तो भी कितने ही लोग अज्ञानसे कह देते हैं कि ये तो जैन हैं और हम अजैन हैं। उनसे हमारा यहां कोई सबध नहीं इत्यादि। किंतु यह भ्रान्त कल्पना है।

भावार्थः—चाहे जैन हो या अजैन हो, मनुष्य जाति एक ही है जो जीते सो जैन हैं। किसको जीते ? माया और मोहको। यह शब्द किसी समाजविशेषके लिए ही व्याप्ति रूपसे लागू नहीं है। परन्तु इसके अर्थकी विशालता

व्यापक और सार्वभौम है। सकुचित नहीं है। क्यों कि—

जैन अजैन शब्द की योजना

रागद्वेषादिमुक्तस्त्वायेषां जिनोऽस्ति देवता।
ते जैनास्तत्त्वत. सन्ति, पक्षपातविवर्जिता ॥ ६१ ॥
पूर्वोक्तलक्षणाद्बाह्यास्तेऽजैना बोधवर्जिता।
ज्ञात्वेति मूढतां मुक्त्वाऽमूढाःस्यु सौख्यदा मिथ ॥६२

संस्कृतार्थ —रागद्वेषविवर्जित जिन एव येषां देवता एव पक्षपातादिदोषवर्जिता विवेकिनस्तत्त्वत जैना भवन्ति, " जिनो देवो यस्य इति विग्रह "तस्य देवता "इति सूत्रेण अण् विधानात् व्याकरणशास्त्रानुसार सिद्धमस्येव शब्द ।

अस्माल्लक्षणाद्बाह्या बहिर्भूता येऽविवेकेन अबोधोपहता सन्त , यदा तदा रागिण द्वेषासास देव म न्य ते त एव अजैना ,इति ज्ञात्वा मूढता=अज्ञान, मुक्त्वा, मिथ परस्पर, सौख्यदा सुखदा यिन , अमूढा=सदसद्विवेकविशिष्टा स्यु भवेयु ॥

DEFINITION OF THE WORDS
JAIN AND NON JAIN

Men whose God is 'Jina who is void of feelings like anger hatred,etd and who do not obeerve partiality,are really 'Jains Those who 'worship through ignorance a diety which possesses anger, hatred, etc are said to be Non Jains Knowing this, leave ignorance and have right knowledge which brings happiness to all of us (61 62)

अर्थ —रागद्वेष रहित, वीतराग "जिन" देवकी अथवा रागद्वेष रहित सब देवोंकी जो उपासना करते हैं वे ही वास्तवमें सम्यग्दृष्टि जैन हैं। यह पक्षपातरहित व्याख्या है। और जो इससे विपरीत कषायसे विषयादि सहित अनेक विरुद्धस्वभाववाले देवोंकी उपासना अज्ञानपूर्वक करते हैं वे ही अजैन हैं। इसलिए अज्ञानको छोड़कर परस्परमें मुग्धदर्शी और विवेकी बनो।

भावार्थ —जैन वही हो सकता है जो भगवानके पांचों कल्याणकोंको और चार ही प्रकारके आश्रयोंको क्रमसे उस २ अवस्थानुकूल वन्दना विनय, आदर सत्कार आदि करता हो और अन्तमें आप भी कृतकृत्य बननेकी इच्छा रखता हो। उसका जन्म चाहे क्षत्रियादिक जैन जातिमें हो या अन्य जातिमें। जो इस प्रकार श्रद्धान नहीं रखता है वह सच्चा जैन नहीं है और भी विशेष जान लीजिये।

मिथ्याक्षपक्षपातादीन्, मोहादीन् दुःखदान् सदा।
जयन्ति पतनतो ये ते, जैनाः प्रोक्ता दयापराः॥ ९३॥
पूर्वोक्तलक्षणाद्यस्माद्भिन्नास्तेऽजैना सन्ति सत्यतः।
ज्ञात्वा माऽद्धरिषु जित्वा, जैनाः स्युः शर्मदा मिथः॥९४॥

संस्कृतार्थ — मिथ=मन, अक्ष=स्पर्शनरसनघ्राणचक्षुः-श्रोत्राणि पञ्चेन्द्रियाणि, तद्पक्षपातादीन्=

तान्=दु खदायकान् ये सदा यत्नतः जयन्ति=विजयन्ते,सर्वान्कुर्वन्ति ते दयापरा करुणाशीला जैना प्रोक्ता ये तल्लक्षणात् बहिर्भूता पक्षरागद्वेषवशगता न निश्चयतोऽ, जैना इति विचार्य मोहरिपु जित्वा, मिथ परस्पर, शर्मदा =सुखदायका जैना स्यु =भवथ

Men who conquer anger, hatred etc which always give misery and which go with the organs of senses, such as mind eye, etc are said to be 'Jains' who are very kind to all

Men who are void of the above mentioned things and who are the servants to organs of senses and who are cruel are said to be 'Non Jains So conquer the enemies in the forms of anger ,hatred temptation etc be happy and be Jains in the true sense [63 64]

अर्थः—जो व्यक्ति, दुःखदायक मन और पांचों-इन्द्रियों के पक्षपात, रागद्वेष और मोहको यत्नपूर्वक जीतते हैं, सब जीवों पर दया करते हैं, वही जैन कहे गये हैं। जो इस लक्षणसे बाह्य हैं, मन और इन्द्रियोंके दास हैं और निर्दयी हैं वे तो अजैन हैं। इसलिये मोहशत्रु को जीतकर परस्परमें सुखदायक सच्चे जैन बनो।

भावार्थः—सच्चा जैन बननेकेलिये अपने मन और इन्द्रियोंको वशमें रखना होगा और राग, द्वेष, पक्षपात, निन्दा, ईर्षा आदिको उठाकर फेंक देना होगा। सब जीवोंके साथ मैत्रीभाव रखना होगा और सभीके हितकी

कामना करनी होगी और मोहकी शृंखलाको भी तोड़ना होगा।

ये येनांशेन रागादीन् पक्षपाताञ्जयन्ति च ।
ते तेनांशेन जैनाः स्युः मिथः सौख्यशान्तिदाः ॥६५
ये येनांशेन रागाद्यैः पक्षपातादिकीलिताः ।
ते तेनांशेन मूढाः स्युरजैनाः दुःखभाजनाः ॥ ६६ ॥

संस्कृतार्थः—ये खलु जनाः, येनांशेन रागादीन् पक्षपातान् जयन्ति मिथः सौख्यं, शान्तिं च ददति ते तेनांशेनैव जैनाः स्युः, ये च येनांशेन रागेन=मोहेन अन्धाः=निमीलितनयनाः, पक्षपातादि वशगताः भवन्ति ते मूढाः दुःखभाजनास्तेनांशेनाजैनाः भवन्ति।

Men who conquer anger, etc become Jains proportionately as they conquer anger etc They become happy in this world But men who have become blind with anger, etc. and who are thus ignorant to a great extent are Non Jains and who suffer from miseries (65 66)

अर्थ —जो प्राणी जितने अंशोंमें राग, द्वेष, पक्षपात आदिक दुर्गुणोंको जीत लेते हैं और परस्परमें सुखशान्ति का संचार करते हैं, वे ही जैन हैं और जो जीव जितने अंशोंमें रागान्ध हैं, पक्षपात आदिकसे कीलित हैं ज्ञानरहित हैं, व दुःखके पात्र अजैन हैं।

सारांश —प्रत्येक मनुष्यमें जितने अंशोंमें राग, द्वेष, पक्षपात, अन्याय, परनिन्दा, चुगली, चोरी आदि कम हैं उतने अंशोंमें वह जैन ही है। चाहे वह अपनेको जैन न

माने और जितने अंशोंमें ये विद्यमान हैं उतने अंशोंमें अजैन हैं। जहां विषय कषाय आदिपर विजय प्राप्त करली जाय वहां जैनत्वका सद्भाव है ही। इसके विपरीत जितने अंशोंमें उपरोक्त दुर्गुणोंका सद्भाव है उतने अंशोंमें अजैनत्व है, चाहे वह अपनेको जैन मानता रहे।

क्षमादिसैन्यद्वारेण, सम्पूर्णारीञ्जयन्ति ये ॥
जयन्ति चार्थतो जैना, ते भवन्ति जिना शिवा ॥६७
सर्वेषां द्वेषरागाणां, वशा यान्त्येव ये जना ॥
तेऽजैना तत्त्वत सन्ति, भ्रमन्ति भवकानन ॥६८॥

संस्कृतार्थः—ये खलु जीवा, क्षमादीनां गुणानां सैन्य बलात् सर्वान् क्रोधादिशत्रून् जयति, अर्थत =वस्तुस्वरूपतश्च ये जयति ते एव जैना भवन्ति, भविष्य च शिवा जिना भवति, ये च हि सर्वेषां द्वेषरागादिदुर्भावानां वश याति ते तावत, अजैना भवकानने भ्रमति।

The soul which conquers all the enemies such as anger, etc with the help of the army in the form of forgiveness, are Jains, and as they get right knowledge are true Jains They are liable to become 'Jina' (God) who is benevolent

Men who are servants to all vices such as anger etc are really speaking Non Jains and they wander through hell (67 68)

अर्थ—जो आत्मा क्षमा आदि गुणोंकी 'सेनाके बल से सम्पूर्ण क्रोध, मान आदि शत्रुओंको जीतते हैं तथा वस्तु

स्वरूपके ज्ञानके कारण जो जयशील हैं, वे ही जैन हैं, तथा भविष्यमें परम कल्याणकारक परमशिव जिन हो जाते हैं। किंतु जो मनुष्य राग,द्वेष,क्रोध आदि दुर्भावोंके वश हो जाते हैं वे ही दुःखके पात्र होकर इस संसारमें परिभ्रमण करते हैं। जैन होनेपर भी वे अजैन हैं।

भावार्थ—जो मनुष्य समीचीन आत्मिक गुणोंके द्वारा षड्रिपुओंको जीत लेता है तथा वस्तुस्वरूपका यथार्थ ज्ञान प्राप्तकर लेता है वही जैन है तथा पने गुने अपनी आत्मामें उन गुणोंका प्रचार कर लेता है तभी जैनत्वकी परिपूर्णता है। परन्तु जो मनुष्य इसके विपरीत भी अनेक प्रकार की दुर्भावनाओंके वश व इन्द्रिय विषय कषाय, प्रमाद आदिके वश होकर अन्याय, अत्याचार, पापाचार में रत हो जाते हैं वे ही जैनत्वसे बाहिर अजैन हैं।

द्विविधा निश्चिता जीवा क्षौ जैनाजैनभेदतः ।
एत कुलप्रभेदे च सर्वे जीवाः समागताः ॥ ६९ ॥
ज्ञात्वेति प्राणिमात्रा क्षौ जैना भवन्तु निस्पृहाः ।
यतः स्यान्मोक्षसिद्धिश्च शांतिराचन्द्रतारकम् ॥७०॥

संस्कृतार्थ—क्षौ=पृथिव्यां, जीवा द्विविधा, एव जैनाजैन भेदात्। अनयो भेदयोरेव सर्वेषाम् जीवानाम् तर्भावात्, इति ज्ञात्वा सर्वे प्राणिन निस्पृहा=निर्विकारा,वीतरागा जैना भवन्तु यत मोक्षसिद्धि स्यात् यावच्चन्द्रदिवाकरौ च भुवि शान्ति स्यात्।

All men in this world are divided in two groups Jains and Non Jains. In these two groups

all beings are included Knowing this all beings should become Jain , free from any worldly ties You will get final liberation and success in this way Peace will rule over earth as long as the sun and the moon shine in the sky　　[69 70]

END OF FOURTH CANTO

अर्थ—ससारमें दो ही प्रकारके जीव हैं,जैन अजैन। इन दो विभागोंमें ही सब जीवोंका समावेश हो जाता है, ऐसा जानकर सभी प्राणि निस्पृह निश्चल जैन बनो, जिससे कि तुमको मोक्षकी सिद्धि हो और जबतक सूर्य चद्रमा है, तबतक पृथ्वीपर शांति बनी रहे।

भावार्थ —इसलिये प्रत्येक मानवको सच्चा जैन बननेकी आवश्यकता है। जैन बननेका मतलब सिर्फ इतना ही है। जो मतमतान्तर पक्षपातादिकका दूर करता हो और जितेंद्रिय बनकर सारे विश्वको स्वतत्र बनानेकी दृढ भावना रखकर शक्तिअनुसार तद्वत् कार्य करता हो और अपनी आत्माको कृतकृत्य बनाना चाहता हो वहसच्चा जैन कहलाता है। इससे निश्चित होजाता है कि ससारमें जैन और अजैन दो ही भेद हैं। जो विश्वकल्याण और आत्महितमें लगा है वही जैन है और इसके विपरीत सब अजैन हैं।

॥ इति आचार्य कुथुसागरस्वामिविरचित सत्यार्थदर्शन प्रथमें चतुर्थ अध्याय पूर्ण हुआ ॥

—०—

अथ पञ्चमोऽध्यायः ।



सच्चिदम्बररूपेण यदि स्वात्मा न भूष्यते ॥
वद प्रयोजनं चात्मन् किं बाह्याम्बरभूषणात् ॥ ७१ ॥

संस्कृतार्थः—सत् चित्स्वरूपेण वस्त्रेण यदि स्वात्मा न भूष्यते, अलङ्क्रियते तदा हे आत्मन्! बाह्याम्बरभूषणात् ते किं प्रयोजनं अपितु न किञ्चित् फलं सिद्ध्यति ।

THE FIFTH CANTO

If one s soul is not beautified with cloth in the form of a supreme Spirit, oh ! soul, say what is the purpose of your resorting to outer garments ? [and ornaments] No good will come out of it [71]

अर्थ —हे आत्मन् ! यदि तुमने अपने आपको "सच्चिदानंद" रूप वस्त्रसे विभूषित नहीं किया तो बताओ, यह बाह्य वस्त्राभूषणसे तुम्हारा क्या प्रयोजन सिद्ध हो सकता है, अर्थात् कुछ भी नहीं ।

पौद्गलिक वस्त्राभूषण तो केवल भार बढानेवाले हैं तथा पुराने होनेपर इनकी सुन्दरता भी बिगड जाती है, किंतु " सच्चिदानंद " रूप वस्त्र ही अविनाशी और सब विपदाओंसे रक्षक परम विभूषण है, जिसे विवेकी जन धारण करते हैं ।

भावार्थ—बाह्य वस्त्राभूषणों और अलंकारादिकोंके द्वारा सिर्फ विषयकषायादिककी वृद्धि होकर काम उत्पन्न होता है। इनसे आत्मकल्याण नहीं हो सकता है।

न च कस्यापि निन्दार्थं, न ख्यात्यादिक हेतवे ॥
निश्चीयते ततो वृत्ति, सतां कल्याणकारिणी ॥ ७२ ॥

संस्कृतार्थः—या हि न कस्यचिदपि दोषप्रकाशार्थं न च स्वस्मै परस्मै वा ख्याति, लाभ, पूजादिहेतवे, अपितु सर्वेषामेव कल्याणकारिणी, अत सा एव सताम्=सत्पुरुषाणां वृत्तिर्निश्चीयते।

The condu t of the good is therefore, deter mined not to reproach others,not for fame etc but it does good to all (72)

अर्थ—जिसमें न तो किसीकी निंदा प्रशंसा है, न अपने लिए ख्याति, लाभ, पूजा आदिकी कामना है, किंतु जिसमें सबका कल्याण है, ऐसी सज्जनों (सतों) की वृत्ति होती है।

भावार्थ—सत्पुरुष वही हो सकता है जो विषय कषायादिककी वांछाओंसे रहित होकर मायास अलिप्त हो, तथा आत्महित और परहित करनेमें रत हो।

सूरे सद्ग्रंथकर्तुर्मे, कुर्युर्सिधोऽश्च धीमत ॥
अभिप्रायोऽस्ति यस्सत्य, तदेवास्ति च सौख्यदम् ॥७३॥
मदेवास्तीति सत्य नाऽभिप्राय स्यात्कदापि को ॥
किंतु सत्येन शांति स्याल्लोकद्वयहितावहा ॥ ७४ ॥

संस्कृतार्थः—श्री कुंथुसिंधुसूरीन्दु धीमत ग्रंथस्यास्य प्रणे तुरयमेवाभिप्रायोऽस्ति वास्तव तदेव मे, तदेव शोद्यद, यद मे तदेव सत्यमिति दुराग्रहो नास्ति, यत सत्येनैव उभयत्र लोके हितावहा शांतिर्भवति ।

This is the true opinion of me Kunthusagar the learned preceptor the writer of this good book There is no obstinacy, but this opinion is benevolent to all in this world. "Whatever is mine, is true ' This is not my opinion.Let there be peace by the truth in both the worlds This place will achieve happiness [73 74]

अर्थः—इस ग्रंथका प्रतिपादन करनेवाले परम बुद्धिमान् श्रीकुंथुसागराचार्य का जो यही अभिप्राय है कि जो वास्तवमें श्रेयस्कर और सत्य है, वही हमें स्वीकार है । हम कहते हैं या जो हमारा कहना है वही सत्य है ऐसा दुराग्रह तो दुनियामें करना ही नहीं चाहिये । किंतु सत्यसे ही उभय लोकमें सुखदायक शांति की प्राप्ति होती है ।

भावार्थ —ग्रंथकर्त्ताका अभिप्राय यही है कि सत्यको अपनाना जरूरी है । मेरा है सो ही सत्य है ऐसा दुराग्रह नहीं करना चाहिए । इतना ध्यानमें रखना आवश्यक होगा कि सब कोई अपनेको सत्य बतलाते हैं परन्तु जिससे आत्मकल्याण और विश्वकल्याण हो वही सत्य है ।

न स्थित स्वपद किं त स्थितस्यान्यमयासन ॥
गय तत्त्वप्रबोधार्थं, प्रणीत स्वात्मसिद्धय ॥ ७५ ॥

वचनका सदुपयोग

हित मित प्रिय सत्य यदि न ब्रूयते वच ॥
किं तद्वच फल तर्हि चद मे स्याद्विशेपत ॥ ७६ ॥

संस्कृतार्थ —यदि स्वपदे स्वरूपे न स्थित ,अन्यत्र स्थितस्य किं प्रयोजन, एव स्वात्मसिद्धये=आत्मलाभार्थं, तत्वप्रबोधार्थं प्रणीत, किंचित्प्रतिपादितम्, हित=परिणाम सुखावह, मित=आवश्यकता नुकूल, प्रिय हृद्य, स त्य=सत्यपूर्णं, वच वचन, न ब्रूयत=नोच्यते, तर्हि तद्वच फल विशेषत किं स्यात् । इति मे प्रतिपादय ।

Oh! soul, if you will not try to achieve your right place, what of your settling in other places! Hence it is discussed for the understanding of principles and welfare of the soul If benevolent, agreeable, loving, and truthful words are not spoken, what is the fruit of such words? What will there be my speciality then! (Hence a man can attain a high position if he speaks benevolent measured, loving and truthful words.) (75-76)

अर्थः—यदि अपने निजस्वरूपमें स्थित नहीं हुवे तो अन्यपदमें स्थित होनेसे प्रयोजन ही क्या है, इस प्रकार आत्मलाभ अर्थात् अपने भलाईके लिये और तत्वका ज्ञान करानेके लिए यह किंचित् प्रतिपादन किया है। तथा प्रत्येक प्राणीको सदा यह भी सोचना चाहिये कि यदि वह हित, मित, और प्रिय सत्य वचन न बोले तो इन वचनोंका फल ही क्या ? अर्थात् हितमित प्रिय वचन से ही मनुष्यकी श्रेष्ठता ज्ञात होती है ।

भावार्थ —जिह्वाके अग्रभागमें सरस्वतीका निवास है। इसलिए आत्महित और परहितके वचन बोलना ही मनुष्य जन्मको सार्थक बनाना है और स्वस्थानमें स्थित रहनेमें ही स्वपरकल्याण है।

धनका सदुपयोग

दानं धर्मं धनं यस्य, यदि नैव नियुज्यते ॥
किं तद्धनफलं स्यात्तु, वा तद्देहप्रयोजनम् ॥ ७७ ॥

संस्कृतार्थ —धनागमे यदि=कल्याणप्रद कार्यकलाप, यथा दान, धर्मे, धनं नैव नियुज्यते, तस्य धनं किं फलं स्यात्? किं वा तद्देहेनापि सिध्यति?

If a person does not utilise his wealth in benevolent actions such as of donation and religion, what is the fruit of the wealth to him and of the person being born in this world? (77)

अर्थ —जिसने धन पाकर भी उसे दान, धर्म आदि उत्तम कार्योंमें नहीं लगाया हो तो उसके धन पानेका फल ही क्या हुआ और उसके देहका प्रयोजन ही क्या सिद्ध हुआ।

भावार्थ —धन सद्गति और दुर्गति दोनोंका कारण है। इसलिए उसको आत्महित और परहितमें लगाकरके दुर्गतिसे बचना चाहिए।

शक्तिका सदुपयोग

प्राणिनां रक्षणे शक्तिर्यदि नैव प्रयुज्यते ॥
किं तच्छक्तेर्भवेद् ह्यात्मन् विद्यते को प्रयोजनम् ॥७८॥

संस्कृतार्थ —हे स्वात्मन् ! प्राणिनां=सर्वसत्वानां रक्षणे शक्तिर्वेत्त यदि न प्रयुज्यते, तर्हि तस्याः शक्तेः कोऽर्थ=कोऽत्र किं प्रयोजनं सिद्धं ? इति वद ॥ कथय।

Oh soul ! If your power is not utilised to protect all beings, say what is the use of your power? what is it s purpose in this world ? (78)

अर्थ.—हे आत्मा, यदि प्राणिरक्षामें तुमने अपनी शक्ति नहीं लगाई तो उस शक्ति प्राप्त करनेसे इस दुनियामें तुमने कौनसा प्रयोजन सिद्ध किया, अर्थात् कुछ भी नहीं। शक्ति पानेका फल यही है कि इससे दुनियामें दया और निर्बलोंकी रक्षा की जाय, तभी अपनी भी सुरक्षा हो सकती है। यदि शक्तिका केवल स्वार्थसाधन और परपीडामें ही लगाया तो महापापका कारण बन जाती है।

भावार्थ —शक्ति पाकरके विश्वरक्षा करना ही मनुष्यता है। इसके बिना उसका कोई मूल्य नहीं है। पशुओंमें स्वार्थ साधनके हेतु शक्तिका दुरुपयोग होता है।

विवेकका सदुपयोग

स्वात्मा विवेकबुद्ध्या न भवाब्धेः यदि तार्यते ॥
किं तद्विवेकबुद्धेः स्यात्फलं मे तत्त्वतो वद ॥ ७९ ॥

संस्कृतार्थ —विवेक =सदसद्विचारस्तस्य बुद्धिस्तया, स्वात्मा स्वजीवः भवाब्धेः =संसारसागरात् यदि तार्यते=उत्तार्यते, तदा तद्विवेकबुद्धेः किं फलं स्यादिति मे तत्वतः यथार्थतः वद।

If the soul can not cross the ocean in the form of the worldly life by common sense what is the fruit of possessing common sense ? Please tell me comformably to the truth [79]

अर्थ:—सदसद्‌के विचार स्वरूपवाली विवेक बुद्धि से यदि अपनी आत्माको संसारसागरसे पार नहीं उतारा तो विवेक बुद्धि पानेका फल ही क्या होगा, यह मुझे ठीक २ बताओ।

भावार्थ —संसारके अन्य समस्त कार्य तो सहज हैं तथा अनेक बार सम्पन्न भी किये जा चुके हैं। किंतु आत्माका उद्धार करना ही महान् कार्य है। यदि यह नहीं किया तो केवल संसारभ्रमण ही है। इसलिए विवेक बुद्धि पाकर आत्मोद्धारमें लगाना यही इसकी सफलता है। मानवोंका अंतिम ध्येय लौकिकतात्विक भाव २ आत्म शांति प्राप्त करनेका होना चाहिए।

आत्मरसपान

यदि स्वात्मरसः शुद्धः प्रयत्नान्न च पीयते ॥
दुग्धादिपानतः किं ते स्याद्विशेषप्रयोजनम् ॥ ८० ॥

संस्कृतार्थ —यदि शुद्धस्वात्मानुभवरसः प्रयत्नपूर्वकं न पीयते तदा दुग्धादिपानतस्ते किं विशेषप्रयोजनं स्यात्? न किंचिदित्यर्थः।

If the juice of experience of pure soul is not tasted (drunk) with efforts, what is your speciality in drinking milk,etc [80]

अर्थ —शुद्ध आत्माका अनुभव रूपी रस यदि प्रयत्न पूर्वक नहीं पीया तो दूध आदिक पीनेसे भी तुम्हारा क्या विशेष प्रयोजन सिद्ध होगा। दूध पीनेस तो थोडीसी तृप्ति होती है। यदि आत्माका अनुभव रूपी रस पिया जावे तो परम आनंद प्राप्त होता है।

भावार्थ —अनेक प्रकार पौद्गलिक रसका पान करते अनंतकाल बीत गया, परन्तु आजतक तृप्ति नहीं हुई। आत्मिकरस पीनेसे अलौकि शांति और समताभाव रख नेसे लौकिकशांति प्राप्त होती है।

आत्मानंद भोजन

यदि न भुज्यते यत्नात्स्वात्मोत्थ शुद्धभोजनम् ॥
केवल मोदकादीनां भोजनात्किं प्रयोजन ॥ ८१ ॥

संस्कृतार्थ —यदि स्वात्मोत्थशुद्धभोजन न भुज्यते तर्हि किं प्रयोजन सिद्धयति केवल मोदकादीनाम् भक्षणात् ?

If the pure dinner originating from the soul is not taken with exertion, what is the use of your eating only sweets, etc ? (81)

अर्थ—यदि प्रयत्नपूर्वक शुद्धात्मविचाररूप भोजन नहीं किया तो केवल लड्डू खानेसे भी क्या प्रयोजन सिद्ध हुआ। लड्डू आदि खानेसे तो थोडी देरके लिए भूख मिटती है तथा अधिक खा लिये जावे तो अतृप्ति रोगादिककी उत्पत्ति भी हो जाती है। इसलिए केवल

[illegible]

छद्द्र घरानमें ही आनन्द नहीं है, किन्तु सच्चा आनन्द अपने शुद्धात्माके विचारमें है।

भावार्थः—मतलब यह है कि विविध व्यंजनसे आत्मा तृप्त नहीं हुआ है और न हो सकता है। परन्तु स्वात्मोत्थ शुद्ध भोजनसे ही आत्मा सन्तुष्ट हो सकता है।

ज्ञानजलस्नान

ज्ञानाम्बुस्नानतः स्यात्मा यदि शुद्धो भवेन्न ते ॥
किं जलस्नानशुद्ध स्यात्फलं भुवि प्रभो वद ॥८२॥

संस्कृतार्थः—यदि ते स्वात्मा ज्ञानाम्बुस्नानतः शुद्ध पवित्र न भवेत् तर्हि भुवि जलस्नानशुद्ध किं फलं विद्यते।

If the soul is not purified with water in the form of knowledge, what is the purpose of your bathing in water in this world? [82]

अर्थः—यदि तुम अपनी आत्मा को ज्ञानरूप जलसे शुद्ध नहीं बनाते हो तो जल स्नान द्वारा शुद्धि करनेसे भी क्या प्रयोजन सिद्ध होता है? जलसे तो केवल शरीरकी बाह्य शुद्धि होती है सो भी थोड़ी देरके लिए ही। शरीर फिर वैसा ही मलिनका मलिन। इसलिए यदि चाहते हो तो ज्ञानरूप जलसे आत्माको

भावार्थः—आत्मशुद्धि ज्ञानरूपी
सकती है। जलसे केवल श...
होती है। ...दिके लिए प्रयत्न

आत्मनिवास

शुद्धात्मनि निवासो न, किं गृहादिनिवासतः ॥
स्थितिस्ते शुद्धचिद्रूपे न स्याद् यत्स्थितेश्च किं ॥ ८३ ॥

संस्कृतार्थः—हे आत्मन् ! यदि शुद्धात्मनि निवासो न क्रियते, गृहवासतः किं फलं, यदि चेत् स्वस्वरूपे ■ स्थितिर्निवासो नास्ति, अन्यत्र देहगृहादिषु निवासात् किं फलं ? न किंचिदपीत्यर्थः ।

If you do not think [live in] of pure soul, what is the use of your staying in a house or in the jungle ? If you do not stay in the Supreme Being, what of your staying at other places [83]

अर्थः—हे आत्मन् ! यदि तुमने अपनी शुद्ध परिणति में निवास नहीं किया, शुद्ध चैतन्य स्वरूपमें ही अपना स्थान नहीं बनाया तो अन्यत्र देह, गेह वन आदि में रहने से क्या फल ? अर्थात् कुछ भी नहीं । शुद्धात्माके सिवा अन्यस्थानोंमें निवास करना निष्फल है क्यों कि अन्य सभी वस्तु क्षणिक हैं, इसलिए उनसे केवल संसार भ्रमण ही होता है ।

भावार्थः—शुद्ध आत्मा ही इस जीवका वास्तविक निवास स्थान है जिसमें रहनेसे यह जीव कभी स्थान च्युत नहीं होगा । संसारमें अनेक स्थानोंमें रहते अनंत काल बीत गया । परंतु सब निष्प्रयोजन रहा । इस प्रकार आत्मशुद्धिका वर्णन किया, क्यों कि आत्मशुद्धि संसारमें मुख्य कार्य है ।

[illegible]

भूपतीनां देशप्रमुखानां कृते विशेषमननीया शिक्षा ॥

आगे विश्व व अखण्डशांति कायम करनेके लिए राजा और देशके नेताओंको विशेष मनन करने योग्य शिक्षा बतलाते हैं।

हिंसासत्यातिलोभादि, स्तेयान्यस्त्रीसमागमान् ॥
कुर्वन्तु केवलं नाति, ब्रुवन्तु विश्वनायकाः ॥ ८४ ॥
किन्तु हिंसादिलोभानां, स्यादावश्यकता नृणाम् ॥
व्यवस्थांनि मिथ कार्या विश्वशान्तीच्छुकैर्नृपैः ॥८५॥

संस्कृतार्थ —विश्वशान्तिसमुत्सुकैः नीतिनिपुणैः नृपाद्यैः, हिंसासत्यलोभास्तेयपरदारागमनवर्जनादीनाम् केवलं निषेधाज्ञा एव न प्रचारणीया, किंतु एतेषामपि आवश्यकता एव कारणविशेषे इति व्यवस्था कार्या।

Men should not resort to violence they should not tell a lie they should not be too covetous They should not commit theft, and they should not wish to enjoy other's wives The States men in the world should clearly declare themselves against such thing There should be no nece sity for the Kings to resort to violence, covetousness etc Kings wishings the achieve worldwide peace should make laws and treaties (arrangement) among them with regard to violence, etc (84 85)

अर्थः—हिंसा झूठ, चोरी, अतिकाम, परस्त्रीगमन इत्यादि अनर्थोंको रोकनेके लिए केवल हुक्म या कानू-

बनाकर ही प्रजापालक अपने कर्तव्यकी इतिश्री न समझें, किंतु विश्वशांतिके अभिलाषी राजागण, नृपति मंडलको चाहिये कि किसी भी जीवकी हिंसा, झूठ, चोरी, अति संग्रह आदि पापोंकी आवश्यकता ही न हो ऐसी दृढ व्यवस्था करें।

भावार्थ —सारे विश्वका भार राजाओंके ऊपर है। विश्वको तारना और डुबोना भूपतियोंके हाथमें है। इस लिये ग्रंथकर्ता का अभिप्राय है कि प्रजा को पुत्रवत् समझकर उसका पालन व रक्षण करना आवश्यक है और यही राजाओंका प्रधान कर्तव्य है कि जिससे कीर्ति यावत् चंद्र दिवाकर उज्वल बनी रहे और प्रजापर कोई आपत्ति न पडे। अपनी आत्मा पवित्र बने।

वस्त्रान्नगृहविद्यादि दानेन दण्डदानतः ॥
यतः सर्वे प्रजाः स्वस्थाः, अन्यथा जल्पनं वृथा ॥८६॥
धीमता स्वात्मनिष्ठेन, कुन्थुसागरसूरिणा ॥
दत्ता शिक्षा समीचीना, श्रीदेति विश्वशान्तये ॥८७॥

संस्कृतार्थः—वस्त्रान्नगृहविद्यादिदाने यथोचितैः प्रजा स्वस्था कार्या, न केवलं दण्डदाने दमनीया, अन्यथा प्रजापालकानां केवलं जल्पनमात्रेण वृथा स्यात्। इति समीचीना शिक्षा या सर्वेभ्यः श्रीदा कल्याणकारिणी अस्ति सा श्री स्वात्मनिष्ठेन धीमता कुंथुसागराचार्येण केवलं विश्वशान्तये दत्ता।

The sub,ects should be made happy granting them clothes,food,house,education,etc and should not be given mere punishment Good arrangement of supplying the above things will make the people happy It is useless to speak or order only The learned preceptor His Holiness Kunthusagar who is completely inclined to his soul gives this good advice which brings happiness and will restore peace in the world (86-87)

अर्थः—वस्त्र, गृह, विद्या, अन्न इत्यादि अत्यावश्यकीय वस्तुओंका यथोचित प्रबन्धके द्वारा दान करके प्रजाको स्वस्थ सुखी करना चाहिये। केवल दण्डदानसे प्रजा स्वस्थ नहीं होती। अतः उक्त वस्तुओंका यथोचित दान प्रबन्ध न हो सके तो केवल कहना या हुक्म चलाना वृथा है। यह कल्याणकारिणी शिक्षा श्री आचार्य स्वात्मनिष्ठ धीमान् कुंथुसागर महाराजने केवल विश्वशांतिके हेतुसे दिया है।

भावार्थ—वर्तमानमें देखा जाता है कि कितने ही शासकगण नियम उपनियम आदि तो बनाते चले जाते हैं, किंतु यह नहीं देखते कि उनके द्वारा प्रजाको वास्तवमें कितनी राहत मिली है। प्रजाको प्रत्यक्ष आवश्यक वस्तु सुलभ तथा सुख शांतिकी व्यवस्था हो तभी सब नियम कानून आदि सार्थक हो सकते हैं। अन्यथा सब कोरा

शिखावा मात्र दे तो उससे राजा व प्रजा की क्या भलाई हो सकती है ! सारांश—दुष्टोंको दण्ड देना जरूरी है परन्तु निबल और सज्जन आत्माओंका पालन करना भोजन करनेसे भी ज्यादा जरूरी है ।

वास्तविक सुखव्यवस्था और सुखका कारण क्या है ।

अहिंसा वीतरागत्वं नृणां स्यात्सुखकारणम् ॥
तद्विनानन्तकार्येऽपि कृते न स्यान्नृणां हितम् ॥ ८८ ॥
इति युक्तिप्रमाणाद्धि प्रणीतं सुखकारणम् ॥
धीमता स्वात्मनिष्ठेन कुन्थुसागरसूरिणा ॥ ८९ ॥

संस्कृतार्थः—हि निश्चयेन " अहिंसा=मा कश्चिद् दुःख-माप्नुयादिति " भावः, वीतरागत्वं=इदं मे मे इति भावाभावः " तद्द्वयमेव सुखकारणं सत्यसुखोपायो वर्तते, तद्द्वयं विना, अनन्तेऽपि कार्यकलापे कृते नृणां हितं न स्यात् । इत्येतदेव सुखाय, युक्तितः प्रमाणतश्च कारणम् इति धीमता आत्मवता श्रीकुन्थुसागराचार्येण प्रणीतं ।

Kings will get happiness by resorting to non-killing and possessing good temperament which is void of anger hatred etc If the kings will not have these qualities they will not be happy, though they may do hundreds of other activities

This is explained with proof and reasoning as blissful by the learned sage Kunthusagar who is completely inclined to his soul (88-89)

अर्थ — संसारमें कोई भी दुःख प्राप्त न हो ऐसे परिणाम को अहिंसा कहते हैं, और मेरा मेरा इस प्रकारके ममताभावका त्याग वही वीतरागपना है। अहिंसा और वीतरागता ये दो ही मनुष्योंका सुखके कारण हैं। इनके बिना अनंत उपाय या कार्य करनेपर भी मनुष्योंको सच्चा सुख या हितका उपाय नहीं मिलता। युक्ति और प्रमाणसे सिद्ध यही सच्चा सुखका उपाय है ऐसा श्री आत्मनिष्ठ श्रीमान् कुंथुसागराचार्य फरमाते हैं।

भावार्थ — चिर विश्वशांतिके लिए, अहिंसाधर्म ही अबाधित हेतु है, इसके बिना विश्वशांति न कभी हुई है और न होगी। आत्मशांतिके लिये वीतरागता ही प्रधान है। इसके बिना आत्मशांति कठिन ही नहीं परन्तु असंभव है। वीतरागता ही या निर्विकारता स्वतन्त्रताकी जननी है और निराकुलता मोक्षकी कुंजी है।

इस लिए अहिंसा धर्मके उपासकोंको हमेशा आत्मशांति व विश्वशांतिके लिए प्रयत्न करना चाहिए। आत्मविकासकी पूर्णता होनेपर यह मनुष्य स्वयं देव बन जाता है तभी विश्वका पूर्ण उद्धार [illegible]ता है।

ग्रन्थनिर्माणोद्देश

सत्यार्थधर्मस्य यथास्वरूपं ।
तथा प्रणीतं च समन्वयनं ॥
मिथो विवादादिसमूलहान्यै ।
ग्रन्थे किलास्मिन्न परोऽस्ति हेतुः ॥ १० ॥

संस्कृतार्थः—प्रकृतग्रन्थनिर्माणस्योद्देशं स्पष्टीकुर्वन् आह—ग्रन्थोऽयं ख्यातिलाभपूजाद्यैहिकहेतुसिद्धयर्थं न प्रणीतः, अपितु सत्यार्थस्वरूपं यथा वर्तते, तत्प्रकाशनार्थं, तथा च दृष्टिभेददोषसमुत्पन्नविवादप्रशान्त्यै च समन्वयनं धर्मस्वरूपं प्रतिपादितं । विश्वशान्तिरेव महापुरुषाणां इष्टमभीप्सितमिति सुनिश्चितत्वात् ।

Remembering the principles of the religion [सत्यार्थ] as they exist this book is written to remove all the doubts and differences among people. There is no object other than this in writing this book

END OF FIFTH CANTO

अर्थ —यह ग्रंथ ख्याति लाभ पूजा प्रतिष्ठादि ऐहिक स्वार्थके हेतु को दृष्टिमें रखकर नहीं बनाया गया है। अपितु इसके निर्माणमें केवल यही उद्देश है कि लोकमें परस्पर अज्ञानदोषसे उत्पन्न विवाद कलहादि दूर हों, प्रत्येक विषयको यथासंभव समन्वयकी दृष्टिसे देखनेके

लिए लोग प्रयत्न करें। इसीसे विश्वशांति हो सकती है।
इसीको दृष्टिमें रखकर इस ग्रंथका निर्माण किया गया है।

भावार्थः—जगतमें अशांति, विद्वेष कलहादिक भाव अज्ञानके कारणसे ही उत्पन्न होते हैं। आगमोंका कथन, पूर्वाचार्योंका उदेश, परम्पराकी परिपाटी आदिका ठीक २ अर्थको न समझनेके कारण अज्ञानसे लोग आपसमें लडते फिरते हैं। इसलिए उन सब बातोंके संबधमें शांतिसे समझकर समन्वय करनेके लिए प्रयत्न करना चाहिए। क्यों कि विपरीत नीतिसे शांति संस्थापित नहीं हो सकती है। समन्वय आगम अविरोधी हो एवं परंपराके अनुकूल हो। इस प्रकार परस्पर के दृष्टिकोणको ठीक २ समझकर यदि विषयका अध्ययन करें तो परस्पर विवाद कलहादिक उत्पन्न नहीं हो सकते हैं। आचार्यश्री फरमाते हैं कि इस ग्रंथमें इसी बातके लिए प्रयत्न किया गया है कि दृष्टिकोणभेदसे उत्पन्न अनेक विवादास्पद विषयोंका समन्वय हो। एवं लोकमें चिरशांति बनी रहे। क्यों कि विश्वशांति ही महात्माओंका मुख्य व इष्ट विषय है। इसके अलावा इस ग्रंथके निर्माणमें ग्रंथकर्ताका अन्य कोई हेतु नहीं है।

इति श्री सद्धर्मदिवाकर निर्ग्रंथाचार्य श्री कुंथुसागरविरचिते
सत्यार्थदर्शने पञ्चमोऽध्याय ।

—* प्रशस्ति *—

दीक्षागुरोर्धर्मदिवाकरस्य,
श्रीशान्तिसिंधोर्विमलप्रसादात् ॥
विद्यागुरोरेव सुधर्मसिंधो,
ग्रन्थो मयाऽयं रचितः प्रशान्त्यै ॥ ९१ ॥
कश्चित्प्रमादादिवशान्ममास्मिन्ग्रन्थे,
पवित्रे स्खलनं किलासीत् ।
विशोध्य मुक्त्यै च पठन्तु सन्तो,
भावोऽस्ति सूरीरिति काव्यकर्तुः ॥ ९२ ॥

संस्कृतार्थ —कान्ऽस्मिन् कलावरि सद्धर्मदिवाकरस्य दीक्षादायकस्य श्रीशान्तिसिंधोः विद्यागुरोः श्री सुधर्मसागरस्य विमलवरानुग्रहादयं ग्रंथ प्रशान्त्यै, आत्मशान्त्यर्थं रचितः । यदस्मिन् ग्रंथ प्रमादतोऽज्ञानतो वा कश्चित् स्खलनं भवतु, स तत् तद्विशोध्य पठन्तु इति ग्रंथकर्तुः आकुन्थुसागराचार्यस्य विनम्रभावोऽस्ति ।

I have written this book of mine for peace with the grace of Shantisagar who granted me consecration and who is as if the sun of Jainism and with the grace of my tutor Sudharmasagar

It is the desire of the writer of this poetye that if there be any short—comings commited through mistakes any where in this holy book let the good read it correcting it for achieving finil beautitude (91 92)

अर्थ —धर्मदिवाकर दीक्षागुरु श्री आचार्य शांतिसागर महाराज और विद्यागुरु श्री सुधर्मसागर महाराजके विमल प्रसादसे मैंने मशांतिके लिए यह ग्रंथ रचा है। प्रमादसे वा अज्ञानसे इसमें जो त्रुटि रही हों उनको सज्जन पुरुष संशोधन करके पढें ऐसा ग्रंथकर्ता { श्री कुन्थुसागरजी } का विनम्रभाव है।

सत्यार्थदर्शनग्रन्थ कौ कल्पतरुसन्निभ ॥
सुखशांतिं ददन्चाय, जीयादाचन्द्रतारकम् ॥ ९३ ॥

May this book " A glimpse of true meaning (सत्यार्थदर्शन) be read as long as there are the sun and the moon, in this world and may became like the 'Kalp tree [93]

अर्थ —पृथ्वीपर कल्पवृक्षके समान परस्परमें सुख शांतिको देता हुआ, यह " सत्यार्थदर्शन " ग्रंथ जबतक सूर्य और चन्द्रमा है तबतक जीवित रहे।

श्री पृथ्वीसिंहभूपेन न्यायनिष्ठेन धीमता ॥
सुधासनापुरे प्रते पुत्रवत् परिपालिते ॥ ९४ ॥
स्थित्वा स्वात्मप्रशान्त्यर्थं मंगलार्थं सदा भुवि ।
चतुर्विंशतिसंख्याते पञ्चपष्ठ्याधिके शते ॥ ९५ ॥
मोक्षं गते महावीरे दयाधर्मप्रचारके ॥
श्रीपौषशुक्लपक्षे च चतुर्दश्यां शुभे दिने ॥ ९६ ॥
स्वमोक्षसौख्यनिष्ठेन कुन्थुसागरसूरिणा ॥
सत्यार्थदर्शनग्रन्थो लिखितोऽयं शिवप्रदः ॥ ९७ ॥

The sage Kunthusagar wrote this blissful book "A glimpse of true meaning" (सत्यार्थदर्शन) on the fourteenth day of the bright half of the month Pausha [पौष] in the 2465th year of Lord Mahavira's achieving Nirwan (final emancipation) It is the time when the just and learned Rajah Prithvisinha of the city Sudasana is ruling over his subjects like his sons. This book is written so that everlasting peace may rule in this world [94 97]

अर्थ —सुदासना स्टेटके अत्यन्त बुद्धिमान् न्यायप्रिय परम गुरुभक्त श्रीमान् महाराजा पृथ्वीसिंहजी नरेश जो अपनी प्रजा को पुत्रवत् पालन करते हैं। स्वपर कल्याणार्थ वहां कई दिन ठहर करके वीर निर्वाण संवत् २४६५ में पौष शुक्ल चौदसके दिन अपने आत्मिकसुखमें निमग्न महर्षि कुन्थुसागर आचार्यने मोक्षको प्रदान करनेवाला यह सत्यार्थ दर्शन नामका ग्रंथ भव्य जीवोंके उपकारार्थ लिखा।

समाप्तः

श्रीआचार्य कुंथुसागर ग्रन्थमाला.

उद्देश—परमपूज्य आचार्यश्रीके द्वारा रचित ग्रंथोंका प्रकाशन व प्रचार करना व अनुकूलताके अनुसार इतर प्राचीन जैनग्रंथोंका उद्धार तथा प्रकाशन करना है।

सामान्य नियम.

१ इस ग्रंथमालाको जो सज्जन अधिकसे अधिक सहायता देना चाहेंगे वह सहर्ष स्वीकृत की जायगी।

२ जो सज्जन १०१) या अधिक देकर इस ग्रंथमालाका स्थायी सभासद बनेंगे उनको ग्रंथमालासे प्रकाशित सर्वग्रंथ पोस्टेज खर्च लेकर बिनामूल्य दिये जायेंगे।

३ जो सज्जन ५१) या अधिक देकर हितचिंतक बनेंगे उनको पोस्टेज व अर्धमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

४ जो सज्जन २५) या अधिक देकर सहायक बनेंगे उनको पोस्टेज व लागतमूल्य लेकर प्रकाशित ग्रंथ दिये जायेंगे।

५ अन्य सज्जनोंको निश्चितमूल्यसे दिये जायेंगे।

६ ग्रंथोंके मूल्यसे आई हुई रकमका उपयोग ग्रंथमालाके द्वारा प्रकाशित होनेवाले ग्रंथोंके उद्धार में ही होगा।

७ ग्रंथमालाके ट्रस्टडीड होकर मुंबईमें वह रजिस्टर्ड होचुका है।

सहायता भेजनेका पता—सेठ गोविंदजी रावजी दोशी

ठि रावजी सखाराम दोशी, कोषाध्यक्ष, सोलापुर

ग्रंथमालासंबंधी सर्व प्रकारका पत्रव्यवहार नीचे लिखे पतेपर करें।

वर्धमान पार्श्वनाथ शास्त्री

मंत्री—आचार्य कुंथुसागर ग्रंथमाला, सोलापुर